भारतीय समाज और आध्यात्मिक विभूतियाँ

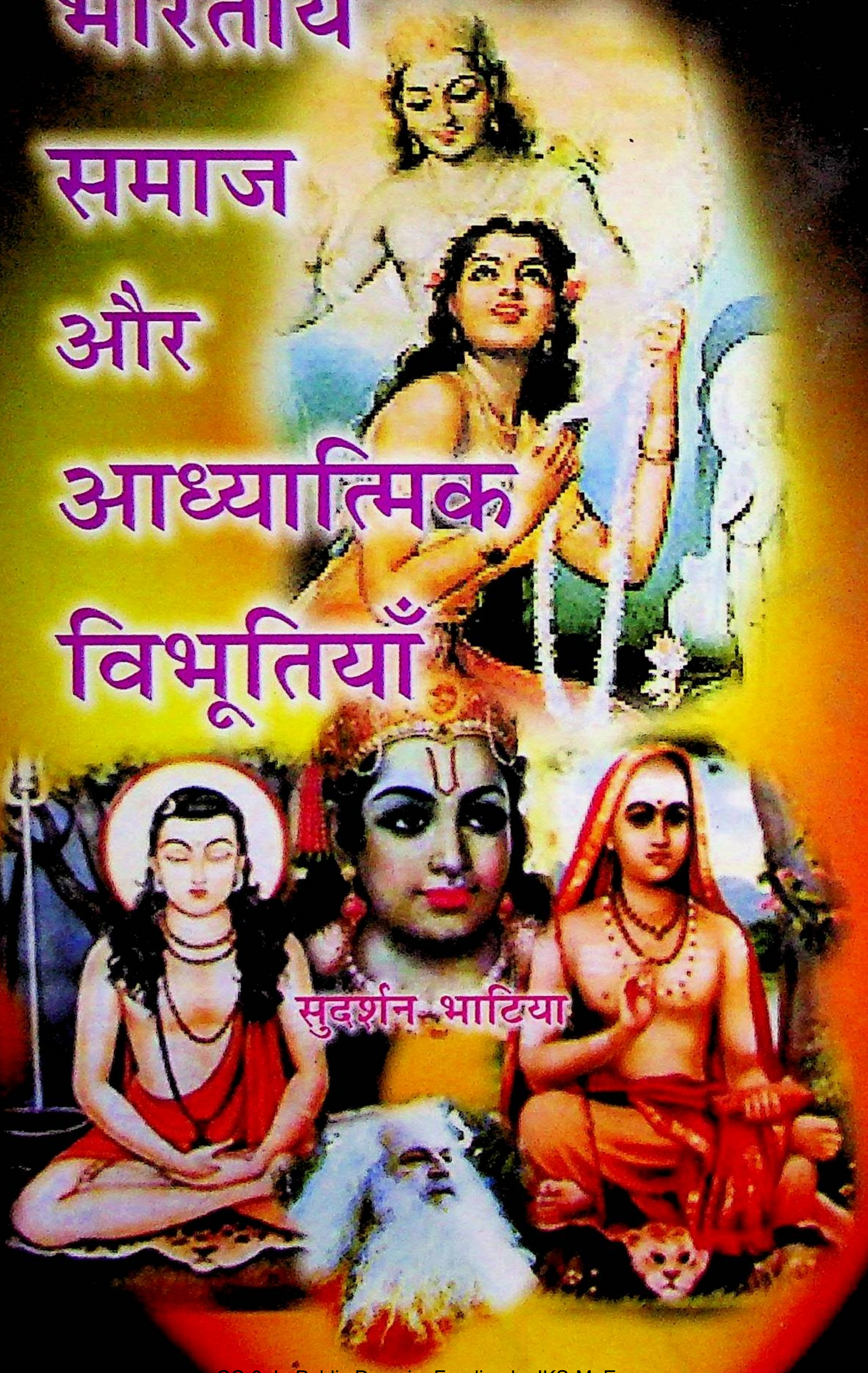

सुदर्शन भाटिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भारतीय समाज और आध्यात्मिक विभूतियाँ

सुदर्शन भाटिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

परम पूज्य पिता स्व० श्री अविनाशी लाल भाटिया जी को,
जिनका प्रताप ही हमारे परिवार के आगे बढ़ने की
प्रेरणा बना हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आध्यात्मिक विभूतियों का भारतीय समाज पर प्रभाव

भारतीय समाज विश्व भर में अपनी गहन एवं उदार संस्कृति एवं जीवन-पद्धति के कारण ख्यात रहा है। जीवन उस परमात्मा का वरदान है जिसने यह सृष्टि रचाई है लेकिन जीने के साधन, ढंग समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बदलते रहे हैं। इन्हें कभी पदार्थवादी लोग विकास के डग कहते हैं कभी अर्थ प्रेरित आवश्यकताओं की धमक। जो भी हो, जीने के लिए केवल रोटी-पानी-वायु ही पर्याप्त नहीं होती बल्कि आत्मिक शान्ति एवं व्यक्तित्व की कान्ति भी महत्त्वपूर्ण है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है और स्वस्थ मन ही संसार की रचना, परमात्मा की अवधारणा तथा आत्मा की गति एवं स्थिति से परिचित हो सकता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज संतुलित एवं प्रेरणामय रहा है। सार्थक जीवन जीने के लिए जिन प्रेरक तत्वों की आवश्यकता होती है वे भारतीय मानसिकता की धरोहर में सदैव विद्यमान रहे हैं। अध्यात्म, आत्मा एवं परमात्मा के विषय में अनेक ऋषियों-मुनियों, विचारकों, एवं साधु-सन्तों ने वर्षों साधना करके अनुभव के हीरे-मोती एकत्रित किए हैं जो भारतीय साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उन्हीं के संकलन-आकलन का प्रयास यहां किया गया है ताकि सार संकलन दे माध्यम से हम उन ज्योति-पुंजों से लाभान्वित हो सकें। ऐसे ज्योति-पुंजों से जिन्होंने अपना जीवन साधना में तपकर होम कर दिया ताकि भारतीय जन-मानस कान्तिमय एवं गौरवपूर्ण अस्तित्व प्राप्त कर सके।

छोटी-छोटी बातें भी हमारे लिए अनेक सूत्र ऐमी कर्मठता के छोड़ जाती हैं जिनका प्रभाव व्यक्त्वि के विकास में परिलक्षित होता है। व्यक्तितत्व का समुचित विकास ही अन्ततः राष्ट्र एवं समाज के हितसम्पादन में सहायक होता है।

श्रीमद् भगवद् गीता का आत्मा सम्बन्धी विश्लेषण वस्तुतः जीवन के आस्थावादी दर्शन का पर्याय है। आत्मा अजर-अमर है। शरीर नश्वर है। जिस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

हम वस्त्र पुराने एवं मैले होने पर उतार फेंकते हैं उसी प्रकार आत्मा अपना चोला बदलती है। अत: जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। मिट्टी में उद्भूत शरीर अन्तत: मिट्टी में मिल जाता है। पंचभूत में लीन होने का सिद्धान्त भारतीय जीवन एवं समाज का आधरभूत विश्वास है जिसने हिन्दू दर्शन को गति प्रदान की है तथा मनुष्य के विश्वास एवं आस्था को पुष्ट किया है।

सद्गुरु की वाणी से भी सदा यही आशय मुखरित होता रहेगा–

तन माटी का महके है, छार मिले छन माहिं।
चार जने कंधे धरें, मरघट पर ले जाहिं।।
जार-बार तन फूंकिया, होगा हाहाकार।
चेत सके तो चेत ले, सद्गुरु कहें पुकार।।

देह का घमण्ड करना व्यर्थ है। राजा रत्नसेन ने पद्मावती को प्राप्त करने के लिए कितना श्रम किया...लेकिन जब उसे अलाउद्दीन ने अपनाना चाहा...तो मुट्ठी-भर राख ही उसके हाथ लगी। जीवन की नश्वरता से मनुष्य परिचित भी रहता है, तो भी धन और देह के प्रमाद में सब-कुछ विस्मृत कर देता है और सांसारिक प्रलोभनों में फंसता-धंसता ही चला जाता है।

त्याग एवं बलिदान भारतीय परम्परा का प्रभावी हिस्सा रहा है। आक्रमण-कारियों ने अनेक बार भारत को रौंदना चाहा परन्तु उन्हें सदा मुंह की खानी पड़ी। कारगिल के युद्ध में भारतीय वीरों ने जो साहस एवं शौर्य दिखाया वह अद्वितीय था। उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया ताकि उन वीरों का देश जीवित रहे। ठीक ही कहा है–

हम न देखेंगे कल की बहार तो क्या,
तुमको वे बहारें दिखा जाएंगे।।
लौटकर आ सके न जहां में तो क्या,
याद बन के तो दिलों में आ जाएंगे।।

जीवन में अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं, जब आपको तुरन्त निर्णय लेना पड़ता है। निर्णय में विश्वास झलकना चाहिए न कि विवशता! चैतन्य महाप्रभु का एक प्रसंग द्रष्टव्य है। उन्होंने न्यायशास्त्र पर बड़े श्रम से एक पुस्तक लिखी। जब इस तथ्य का पता उनके मित्र रघुनाथ को लगा तो वह रुआंसा हो गया। गंगा में नाव में बैठकर निमाई (भगवान चैतन्य) ने अपनी पाण्डुलिपि रघुनाथ को सुनाई...तो उसे अपनी असमर्थता पर पश्चाताप हुआ। उसकी मन:स्थिति को देखकर चैतन्य महाप्रभु ने अपनी श्रमपूर्वक तैयार की पाण्डुलिपि गंगा में प्रवाहित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कर दी...रघुनाथ अवाक् रह गया।

बाद में अपने विश्वास, विचार क्षमता एवं श्रम के कारण निमाई ने चैतन्य महाप्रभु के रूप में ख्याति पाई। त्याग एवं बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाते...वे तो हमारे व्यक्तित्व को पुष्ट एवं बलिष्ठ करते हैं।

परोपकार एवं परमार्थ की भावना से प्रेरित होकर कोई काम करना ख्याति दे जाता है अनजाने में ही। कवेर ऋषि को ब्रह्मा की कृपा से कन्या-रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम कावेरी रखा गया। कावेरी सदा दूसरों के परोपकार के लिए सोचती रहती। उसने खूब तप किया। परमात्मा ने इच्छा जानी तो उसने तुरन्त कहा—वह सदा नदी रूप में बहना चाहती है, ताकि लोगों को लाभ हो सके। ब्रह्म शक्ति ने उसकी यह इच्छा भी पूर्ण कर दी। कावेरी नदी जीवनदायिनी धारा के रूप में निरन्तर प्रवहमान है। यह प्रसंग स्कन्द-पुराण में भी मिलता है।

संत तुकाराम की महानता एवं सादगी के अनेकों प्रसंग प्रचलित हैं। सन्त तो होते ही सीधे-सादे परन्तु अपने निश्चय के पक्के हैं। एक बार उनका एक भक्त उनके लिए मखमल की जैकेट लेकर आया और बोला—'भगवन्, आप इसे स्वीकार करें। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप इसे पहन लें।'

'वत्स, तुम कुछ दिन पहले भी आए थे। मेरे मोटे वस्त्र देखकर तुम्हें शायद विचित्र लगा होगा और तुम्हारे मन में इच्छा हुई कि मैं अच्छे वस्त्र पहनूं। और आज तुम यह ले आए।' सन्त तुकाराम ने कहा।

भक्त ने 'हां' में सिर हिलाया। सन्त ने जैकेट ले ली परन्तु उल्टी करके पहन ली। भक्त के पूछने पर कहा—'देखो...तुम मखमली जैकेट लाए। इसे उल्टा पहनने से मखमल का सुख मेरे शरीर को मिल रहा है...बाकी अन्दर का अस्तर बाहर दिखाई देता है...देता रहे...मुझे इसके उपयोग से मतलब है...बाकी कुछ नहीं।'

व्यापारी भक्त सन्त तुकाराम के तर्क से प्रभावित हुआ और उसने सिर झुकाकर उनकी बात को स्वीकार किया।

प्रायः हम जाति-पांति की दीवारें खड़ी कर लेते हैं तथा उससे भेद-भाव की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। धार्मिक उन्माद बढ़ता है, परस्पर वैमनस्य बढ़ता है जो हमारे विचारों को संकुचित बना देता है। एक प्रसंग से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। गुरु व्यासरामजी का एक शिष्य निम्न जाति से था। उसका नाम था कनकदास। गुरुजी के और भी शिष्य थे परन्तु उस पर उसकी निष्ठा एवं एकाग्रता से कारण विशेष अनुकम्पा थी। दूसरे शिष्य चिढ़ते थे। एक दिन गुरुजी ने कहा—लो,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

एक-एक केला ले लो। इसे ऐसे स्थान पर जाकर खाना जहां कोई तुम्हें देख न रहा हो।

सब इधर-उधर बिखर गए और एकान्त में जाकर अपना-अपना केला खा आए लेकिन कनकदास अपने केले के साथ लौट आया। वह बोला—गुरुजी, कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां हमें कोई भी न देख रहा हो। परमात्मा तो सब जगह विद्यमान है। अत: मैं केला वापिस ले आया हूं।

गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे शिष्य जल-भुनकर राख हो गए। गुरुजी ने कहा—कनकदास बिल्कुल भिन्न है इसलिए भी मुझे प्रिय है।

जीवन में कोई भी काम करना हो तो हमें खुले दिमाग से ही करना चाहिए अन्यथा गुरुजी के अन्य शिष्यों की भांति खिसियानी बिल्ली बनना पड़ेगा।

भारत के सन्त-महन्त सती-साध्वियां किसी के लिए भी सदा प्रेरणा-स्रोत बने रहेंगे क्योंकि उन्होंने अहं त्यागकर ममत्व एवं शान्ति का पाठ पढ़ाया। स्वीकार करना, भले ही कोई कितना भी दुष्ट हो और उसे सही मार्ग पर लाना, उसका मार्ग प्रशस्त करना ही उनका ध्येय रहता है। आदर्श चरित की व्यावहारिक प्रस्तुति से ही किसी लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। सांसारिक पुरुष विश्व के सम्मोहन में खोया रहता है, जबकि आध्यात्मिक लोग उसे इस जंजाल से निकलने के लिए प्रेरित करते हैं निरन्तर।

सांसारिक प्रलोभन हमें पथभ्रष्ट करते हैं। यह शिक्षा हमें संत जोगा के जीवन में घटित एक घटना से मिलती है। उनका एक भक्त अपने गुरु के लिए कीमती पीताम्बर लाया, जिसे गुरु ने लेने से इन्कार कर दिया परन्तु चेला तो उनको वस्त्र ओढ़ाकर ही अपनी सन्तुष्टि देख रहा था। गुरुजी ने वस्त्र ओढ़ तो लिया परन्तु उनका मन भजन-आरती में नहीं लगा...घर पहुंचे, तो भी उनका ध्यान पीले वस्त्र की चमक-दमक में ही अटका रहा। उन्होंने देखा...उनका मन अस्थिर हो गया था...बड़े परेशान हो गए।

उन्होंने अपने आप को दंडित करना चाहा। अपने आप को हल में बांधकर बैलों से खिंचवाया। लहूलुहान हो गए...परमात्मा उनके प्रायश्चित से प्रसन्न हुआ और प्रेमपूर्वक संत जोगा को अपने आलिंगन में ले लिया। लालच के पीछे भागना मूर्खता है। यह जीवन की मृगतृष्णा है...इससे बचना चाहिए।

मध्यकालीन समाज में गुरु गोरखनाथ बहुत लोकप्रिय रहे हैं। उनकी महिमा का भी एक प्रसंग बहुत ही रोचक एवं शिक्षाप्रद है। अपने देहावसान से पूर्व गुरु गोरखनाथ चाहते थे कि उनकी सिद्धियों को संभालने वाला कोई शिष्य मिल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जाए। वह वाराणसी गए। गंगा के किनारे बैठा एक संन्यासी उन्हें दिखाई दिया जो अपने दण्ड को गंगा में प्रवाहित कर रहा था। बाबा गोरखनाथ को वह संन्यासी उपयुक्त पात्र लगा। उन्होंने उसे कहा कि मैं अपने जीवन भर की सिद्धियां तुम्हें सौंपना चाहता हूं ताकि वे भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें।

संन्यासी ने दोनों हाथ फैला दिए और गुरु गोरखनाथ ने अपनी सिद्धियां उसके हाथों पर रख दीं।

उन्हें अपने हाथों में लेते ही संन्यासी ने वे सिद्धियां गंगा में बहा दीं। गुरु गोरखनाथ बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि जिस त्याग से उसने उन सिद्धियों को बहा दिया, उसी भाव से वह उन्हें पुनः अपने पास संजोकर रख सकेगा।

कभी-कभार ऐसा भी होता है कि आम आदमी सूरजमुखी हो जाता है तथा दरबारियों की भांति व्यवहार करने लगता है, भले ही जो वह कहता है, उसमें उसका कतई विश्वास न हो परन्तु वे ही लोग पूजे जाते हैं, जिनमें अपना मत-वैभिन्न्य प्रस्तुत करने का साहस हो।

राजा जनक की शाही सवारी के लिए राजमार्ग सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दिया गया। अष्टावक्र ने इसके विरोध में अपना स्वर बुलन्द किया। लोग डर गए कि अष्टावक्र को दण्ड मिलेगा लेकिन जब राजा को पता चला कि विरोध का स्वर अष्टावक्र ने जनहित में उठाया है, तो वह बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे दण्डित करने की अपेक्षा पुरस्कृत करना बेहतर समझा।

चाटुकार लोग देखते ही रह गए। सही को सही कहने की परम्परा भी भारतीय मानसिकता की परिचायक है। इसी से व्यक्ति की विलक्षणताओं का पता चलता है।

सहनशीलता, परमार्थ जैसे गुण आत्मिक ऊंचाइयों के संस्पर्श से निर्मल एवं स्वच्छ व्यवहार की पारदर्शिता को परिभाषित कहते हैं। रक्षक ही कभी-कभी भक्षक बन जाते हैं परन्तु ऐसे दृष्टान्त भी मिलते हैं जब भक्षक भी रक्षक बन गए। शंकराचार्य के प्रसंग में भक्षक सांप द्वारा फन की छाया से मेंढक की रक्षा का उल्लेख भी मिलता है। वस्तुतः भारतीय जीवन पद्धति वसुधैव कुटुम्बकम एवं जनकल्याण की भावना से प्रेरित है। यही कारण है कि ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिन पर प्रायः विश्वास करना कठिन हो जाता है परन्तु कुटिलता पर सौहार्द की विजय जन-जन को प्रभावित एवं आश्वस्त करती है।

वैसे पौराणिक कथाओं में, खास कर आध्यात्मिक अवतरणों एवं आख्यानों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

में ऐसे सम्मोहक प्रसंग मिलते हैं जो जीवन में प्रेरणा उंडेलने में सक्षम होते हैं। संभवतः उन्हीं अंशों में जिन्दगी के वे फलसफे साकार हुए हैं, जो सिद्धान्त एवं व्यवहार में समान रूप में लाभान्वित करते हैं। मुहम्मद साहिब, श्रीपाद दामोदर, संत लल्लेश्वरी, संत अमृतराय आदि के जीवन एवं चरित से अनेक प्रसंग प्रस्तुत कृति में संजोने का प्रयत्न किया गया है ताकि पाठकवृन्द इनसे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सार्थक एवं सुख-शान्तिपूर्ण बना सकें।

भारतीय समाज विविध धार्मिक विश्वासों एवं मान्यताओं का भण्डार है। इसके अनेक प्रेरणा-स्रोत हैं। उच्चादर्शों के पालन में अनेक महापुरुषों एवं सन्तों ने अपने अनुशासनात्मक जीवन के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आदर्श सामने हो तो स्वाभाविक है कि आम जन उससे लाभान्वित होता है। आध्यात्मिक विभूतियां हमारे प्रेरणा-स्रोत हैं। जो हमें सही जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। अस्तु, प्रस्तुत ग्रन्थ 'भारतीय समाज और आध्यात्मिक विभूतियां' एक ऐसा ग्रन्थ है, जो अपने शीर्षक को तो सार्थकता प्रदान करता ही है साथ ही उपयोगी सामग्री का सुनियोजित सार संकलन भी प्रस्तुत करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विषय-सूची

1. प्रस्तुत पुस्तक में आध्यात्मिक विभूतियां 17
2. आत्मा शाश्वत है, शरीर नश्वर, इसलिए आत्म-निरीक्षण आवश्यक है 19
3. सन्त-महात्माओं के आचरण को अपने जीवन में धारण करें 27
4. न्यायशास्त्र की पांडुलिपि फेंक दी गंगा में चैतन्य ने 36
5. "इस विश्व में बहुत से लोग ऐसे हैं, जिनसे मुझे बहुत सीखना है"–शंकराचार्य 37
6. विद्वान बुढ़िया ने राजा भोज तथा कवि माघ को लाजवाब कर दिया 38
7. "खून का बदला खून नहीं"–महर्षि पराशर 39
8. गोरा कुम्हार ने मिट्टी रौंदते हुए बालक को भी रौंद डाला 40
9. संत की प्रार्थना स्वीकार कर प्रभु ने दुष्टों की बुद्धि को सद्‌मार्ग दिया 41
10. शिष्य चैत्र को गुरु पतंजलि का राग-रंग में भाग लेना खूब अखरा........ 42
11. पिता से मिली उपेक्षा 43
12. संत माधवाचार्य की प्रार्थना सुन गंगा ने पूरी टोली को मार्ग देकर पार लगाया........ 44
13. उर्वशी के शाप से नपुंसकत्व झेलना पड़ा वीर अर्जुन को........ 45
14. धन्ना के लगाए भोग को भगवान खा जाते, पीछे छोड़ते जरा-सा प्रसाद .. 46
15. निर्धन ब्राह्मण ने भी त्याग दिया पारसमणि को, पा लिया कृष्ण-नाम 48
16. पशुओं की करुण चीत्कार ने दूल्हे को बना दिया वैरागी........ 50
17. स्वयं इन्द्रदेव ने परीक्षा ली सप्तर्षियों की तथा उन्हें लोभ-लालच से निर्लिप्त पाया........ 51
18. श्रीहरि ने तीर्थ का नाम रखा कुब्जाम्रक, यही कहलाया हृषिकेश 53
19. ईश्वर-भक्त लल्लेश्वरी को पागल कहकर निकाल दिया ससुराल वालों ने 54
20. ऋषि-पुत्री कावेरी बनी कावेरी नदी 55
21. साधु के मंदिर की बजाय शालिग्राम ने सदन कसाई की दुकान पसन्द की........ 56

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

22. गार्ग्य के पांव से सांप लिपटा रहा और वह शांत पड़ा रहा 58
23. तेलंग स्वामी को चूने का पानी पिलाने वाला ही हो गया बीमार.............. 59
24. राजा जनक की परीक्षा लेने के लिए धर्म ने ब्राह्मण रूप धारा 60
25. देवराज इन्द्र ने चाल चली और महर्षि को बना डाला शिकारी 61
26. बिना बताए मृत बच्चे के लिए दीर्घ आयु मांगी और वह जीवित हो गया 62
27. राजा जनक को शिक्षा देने वाले झुक गये उनके सामने 63
28. गार्गी जीवन भर निर्वस्त्र रहीं तथा इसी प्रकार भ्रमण भी करतीं 64
29. बिना पूछे एक फूल भी नहीं तोड़ना चाहते थे महर्षि चरक 65
30. ईंट (या वीट) पर खड़े रहने के कारण भगवान कहलाए 'विट्ठल' 66
31. भूख से मरते हजारों को बचा लिया एक दरिद्र ने 67
32. संत जोगा को भेंट में मिले पीताम्बर ने मोहित किया तो उन्होंने स्वयं को दंडित किया.. 68
33. अमृत बंटा देवताओं में और वे अमर हो गए.. 69
34. अनन्त भट्ट की पत्नी उनके मामा तथा गुरु की पुत्री थी 70
35. भीतर से साधु होना जरूरी, केवल वस्त्रों से नहीं 71
36. पत्थर की मूर्ति पर फूल न चढ़ाकर साफ-सफाई करना ज्यादा बेहतर...... 72
37. गोरखनाथ ने जिस संत को अपनी सिद्धियां दीं उसने उन्हें गंगा में प्रवाहित कर दिया.. 73
38. महात्मा याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को आत्मा की परिभाषा समझाई 74
39. संत त्सुचि ने विशाल पेड़ देखा जिसकी लकड़ी व्यर्थ थी, वैसे ही जैसे बड़े डील-डौल वाले कुछ लोग.. 75
40. महाराजा भोज ने एक ही परिवार के चार सदस्यों को श्रेष्ठ कवि मानकर पुरस्कृत किया.. 76
41. जनक की सवारी के लिए राजमार्ग बंद करने का विरोध किया अष्टावक्र ने 78
42. शिव तथा नारद भी नहीं समझ पाए माया के रूप 'परा' व 'अपरा'........ 79
43. उपदेश ने उन्हें अहंकार-मुक्त कर दिया.. 81
44. संत ने सेठ से मिली मखमली जैकेट को उल्टा पहन तसल्ली कर ली..... 82
45. शाश्वत दान पा लिया बालक ने पेशवा से.. 83
46. महाराज मान्धाता ने विन्ध्य पर्वत की अर्चना कर दर्शन पाए शिव के...... 84
47. बिना विश्वास व निष्ठा सब बेकार 85
48. नाराज अगस्त्य ने एक ही घूंट में पूरा सागर पी डाला 86

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

49. अहंकारी स्वर्ग का अधिकारी कभी नहीं हो सकता 87
50. निम्न जाति के शिष्य कनकदास के गुणों की सराहना की गुरु व्यासराम ने 88
51. भक्तों की इच्छा के अनुरूप भगवान ने युग-क्रम ही बदल दिया 89
52. भगवान कृष्ण ने स्वप्न में फटकारा विद्वान भट्टतिरि को 90
53. अतिथि ने ही लड़की का हाथ मांग लिया 91
54. केवल संस्कृत में ही संवाद करता था श्रीराम परिवार 92
55. देव-पत्नियों ने शुरू किया था करवाचौथ 93
56. व्याकरणकार पाणिनि थे कभी मन्दबुद्धि बालक 94
57. "मैं देह के होते हुए भी विदेही हूं क्योंकि मुझे अगले पल का भरोसा नहीं"—जनक 95
58. देव, मनुष्य और असुर क्रमशः दमन, दान व दया का पाठ पढ़ा करें 96
59. सूर्यदेव की पत्नी संज्ञा उनके अत्यधिक तेजस्वी शरीर को देखकर मायके लौट गई 97
60. शेर के पूछने पर महर्षि ने तर्क का सहारा लेकर हिरन की जान बचा दी 98
61. अष्टावक्र ने विद्वानों को केवल चमारों का जमघट बताया 99
62. स्वयं लक्ष्मी व नारायण बालक लक्ष्मण की सहायता के लिए व्याध दम्पति बने 100
63. ईर्ष्यालु भट्ट ने संत तुकाराम की पांडुलिपियां चुराकर फेंक दीं नदी में 101
64. सामाजिक कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले महात्मा सुकर्मा की हुई जय-जयकार 103
65. जब भक्षक सांप ने मेंढक पर फन की छाया दे रक्षक का काम किया ... 104
66. गौतम मुनि के नाम पर गोदावरी नदी कहलाई गौमती भी 105
67. अपने ठिकाने को न छोड़ना भी वरदान हो जाता है कभी 106
68. विरोध करने वालों ने ही स्वागत किया उस्ताद रज़ाक हुसैन का 107
69. चूंकि विष्णु नारद के हृदय में अंगूठे की नाईं विराजमान हैं— इसीलिए नारद सबसे श्रेष्ठ हैं 108
70. शनि की मूर्ति खरीदने के लिए कोई तैयार न था 109
71. संत कमाल ने बालक दादू के मुंह में पान की पीक डाल ईश्वर-भक्त बना दिया 111
72. अभिशापित वारांगना ने मधुर भजन गाकर पूर्व की तस्वीर मिटा डाली 112

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

73. ऋषियों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने निर्मित किया मानसरोवर........................ 113
74. शिव भी हुए अचम्भित.. 114
75. भोजन का प्रबन्ध किया था सूर्यदेव ने 115
76. संत द्वारा बनाई साड़ी के कई टुकड़े कर दिये किन्तु वह शांत बने रहे... 116
77. द्रोणाचार्य को अपमानित कर निकाला द्रुपद ने 117
78. लोमश से शाप तथा वर–दोनों पाए ब्राह्मण ने 118
79. व्याकरण-दोष सहर्ष स्वीकार किए केशव भारती ने 119
80. अकेला किसान पहाड़ को तहस–नहस करने जुट गया 120
81. नर तथा नारायण की जांघ से पैदा हुई उर्वशी अप्सरा 121
82. संत ने आतुर होकर सुन्दरी का दीदार तो किया किन्तु फोड़ डालीं अपनी आंखें 122
83. दूल्हा रज्जब ने जब संत दादू को गुरु माना तो बरात लौटा दी और सदा दूल्हे के वस्त्रों में रहे 123
84. राज्य के बदले ज्ञान पाने की इच्छा की जनक ने................................ 124
85. नियमों का पालन किया गुरु चरक ने 125
86. बछड़े ने ध्यान से कथा सुनी तो लोगों ने उसकी बुरी तरह से पिटाई कर दी.. 126
87. मुहम्मद साहब ने कहा था–'सारी दुनिया अल्लामियां ने बनाई है'......... 128
88. पूजा में व्यवधान होता देख उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया 130
89. गौरीबाई के शरीर पर अनेक सुइयां चुभो दी गईं, किन्तु उसे पता ही न चला.. 131
90. "दृढ़ संकल्प से कठिन काम भी सरल हो जाते हैं"–श्रीपाद दामोदर 132
91. प्रशंसक तथा निन्दक का समान आदर करने की बात कहतीं संत लल्लेश्वरी 133
92. शमशान में काली से खुलकर बात की वेदान्ती ने और बने रहे निडर.... 134
93. संत अमृतराय के देह-प्रारब्ध तत्त्वज्ञान को पूर्णत: सत्य माना फकीर ने 136

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक में आध्यात्मिक विभूतियां

पाठकवृंद! आप प्रस्तुत पुस्तक में निम्नलिखित देवी-देवताओं, साधु-सन्तों, ऋषियों--मुनियों तथा नरेशों आदि के जीवन में घटित घटनाओं को जानेंगे। भारतीय समाज पर इन आध्यात्मिक हस्तियों ने गहरा प्रभाव छोड़ा था। इन्हें जानकर हम भी अपने आचरण को धर्म-संगत व व्यावहारिक बना पाएंगे, ऐसा विश्वास है।

1. राम
2. कृष्ण
3. संत तुलसीदास
4. गीता
5. ऋग्वेद
6. स्वामी गीतानन्द
7. संत सुकरात
8. चैतन्य महाप्रभु
9. शंकराचार्य
10. राजा भोज
11. कवि माघ
12. महर्षि पराशर
13. महर्षि वशिष्ठ
14. महर्षि पुलस्त्य
15. गोरा कुम्हार
16. महर्षि पतंजलि
17. महर्षि शाल्विन
18. संत माधवाचार्य
19. इन्द्रदेव
20. धन्ना जट
21. भगवान आशुतोष
22. जैन मुनि नेमिकुमार
23. सप्तर्षि
24. भक्त रैम्य
25. संत लल्लेश्वरी
26. कुबेर मुनि
27. सन्त सदन
28. महर्षि बोधायन
29. तेलंग स्वामी
30. राजा जनक
31. संत कंवर राम
32. गार्गी
33. महर्षि चरक
34. संत पुंडलीक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

35. ऋषि मुनिरात
36. संत जोगी
37. भगवान विष्णु
38. अनन्त भट्ट
39. रामशास्त्री प्रभुणे
40. स्वामी स्वरूपानन्द
41. गाडगे महाराज
42. गुरु गोरखनाथ
43. संत त्सुचि
44. महामुनि अष्टावक्र
45. मधुसूदन सरस्वती
46. संत तुकाराम
47. महात्मा आनन्द खण्ड
48. महर्षि अगस्त्य
49. संत कनकदास
50. गौतम ऋषि
51. मेल पत्तूर नारायण भट्टतिरि
52. महर्षि अत्रि
53. पंडित श्रीराम
54. पाणिनि
55. सूर्यदेव
56. महर्षि उतथ्य
57. यादव प्रकाश आचार्य
58. महर्षि पिप्पल
59. संत नरहरि
60. राजा सत्यव्रत
61. संत दादू
62. संत कृष्णदास
63. रानकदे
64. संत तिरूवल्लुवर
65. महर्षि भरद्वाज
66. लोमश ऋषि
67. पं॰ केशव भारती
68. उर्वशी
69. संत बिल्व मंगल
70. संत महीपति
71. संत गौरीबाई
72. दामोदर सातवलेकर
73. नारायण भ्रान्तन्
74. संत अमृतराय
75. संत गोपालम
76. राघवेन्द्राचार्य
77. श्रीधर स्वामी
78. चन्द्र देवता
79. दक्ष प्रजापति
80. संत रंगदास

आदि जिन्होंने हमें तथा हमारे समाज को खूब प्रभावित किया, जिनके पदचिह्नों पर चलने में हमारा हित है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

आत्मा शाश्वत है, शरीर नश्वर, इसलिए आत्म-निरीक्षण आवश्यक है

जो भी प्राणी पृथ्वी पर आया है, उसे तो जाना ही है। किसी को जीवन लम्बा मिलता है, किसी को छोटा। मगर शाश्वत कोई भी नहीं। यदि शाश्वत है तो आत्मा बस...बाकी सब बेकार।

हमारे महान संत, महात्मा, साधु, ऋषि, फकीर, पीर तथा निर्लिप्त प्रवृत्ति के लोग हमें विकारों से दूर रखने के विभिन्न रास्ते बताते हैं। सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। लम्बे-लम्बे उपदेश सुनकर कुछ लोग ऊब जाते हैं। सत्संग, कथा, कीर्तन में बैठ नहीं सकते। कुछ के पास समय का अभाव होता है, किन्तु जानने के लिए, समझने के लिए प्रबल इच्छा होती है। ऐसे जिज्ञासुओं के लिए, सद्मार्ग पर चलने के लिए ही इस पुस्तक का सृजन किया गया है। हम परिवार में रहकर, अपने जीवन को सुधारते हुए पूरे समाज तथा देश के लिए कुछ विशेष कर लें तो समझो हमारा जीवन सफल हो गया, जन्म लेना सार्थक हो गया। यह पुस्तक हमें इसी दिशा में चलने की प्रेरणा देती है।

महापुरुषों, सन्तों, पीरों के प्रसंग पढ़ने के लिए अपने मन को उसी दिशा में ले जाना जरूरी है।

- **राम**–जिस प्रकार विशाल वट वृक्ष की प्रकृति एक सूक्ष्म बीज में निहित होती है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड बीज मंत्र 'राम' में निहित है।
- **कृष्ण**–कृ+ष+ण
  संसार में जो सर्वाकर्षण है, संसार में जो सबसे सुन्दर है, संसार में जो सर्वशक्तिमान है, वही कृष्ण है।
- विश्वास दिमाग का विषय है। भक्ति हृदय का विषय है। ध्यान दिमाग और हृदय दोनों को जोड़ता है।
- भक्ति और समर्पण बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं।
- मन्त्र के पुनः-पुनः उच्चारण या अभ्यास से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

- ईश्वर पर निर्भरता से समाधि की पूर्णता होती है।
- संत तुलसीदासजी का दोहा, खानखाना के नाम। यह कवि भी थे तथा माने हुए दानवीर। अकबर के दरबार में सुशोभित रहीमजी (खानखाना) को संत तुलसीदास की ये पंक्तियां प्राप्त हुईं तो वह बड़े प्रसन्न हुए, पंक्तियां थीं–

  ऐसी करनी कहां से सीखे हो तुम सैन।
  ज्यों ज्यों देवत दान को त्यों त्यों नीचे नैन।।

  रहीमजी ने जो उत्तर भेजा, वह था–

  देवनहार कोई और है, जो देवत दिन रैन।
  लोग भ्रम मोह पर करें, ता सों नीचे नैन।।
- सेवा ईश्वरीय कार्य है, जिसे सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। करने वाला तो वह स्वयं है, हम तो केवल निमित्त हैं, प्रभु के कार्य की पूर्ति के लिए।
- क्या ऐसे सब जन नहीं हो सकते–

  मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया।
  हर फिक्र को हमेशा उड़ाता चला गया ।।

  जो ऐसा व्यक्ति होगा वह सबके लिए प्रिय, प्रेरक, सहायक, सुख-दुख में काम आने वाला माना जाएगा। उसे सब तरफ से प्यार मिलेगा।
- और देखिए : नहीं डिगा पाएगा कोई, तेरे दृढ़ संकल्पों को,
  कभी न रुकना, कभी न झुकना, यह तेरा ईमान है।
- साथ ही ऐसा भी : औरों को हंसते देखो, हंसो और सुख पाओ।
  अपने सुख को भूल सबको सुखी बनाओ।।
- मनुष्य सुख और दुख दोनों का सृष्टा एवं दृष्टा खुद ही है।
- बुजुर्ग कहा करते थे : जीवन एक अनुराग है–उसका अनुभव करें।
- जिसे शक है, वही करे खुदा की तलाश।
  हम तो इंसान को ही इस दुनिया का खुदा मानते हैं।
- निरन्तर ज्ञानोपार्जन करना सात्विक तप है।
- जीवन एक प्रण है, उसका पालन कीजिए।
- सहायता वही है जो मुट्ठी बंद करके एक हाथ से दीजिए और दूसरे हाथ को पता भी न चले।
- जीवन के सब वैभव प्राप्त करने वाला व्यक्ति यदि धर्म मार्ग को कभी न त्यागे, वह महान कहलाएगा।

S.P.S. Library Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

- छूने हों तो रोज सवेरे माता पिता के छुओ चरन।
  लेनी हो तो लो आशीषें, झुककर करो सभी को नमन।।
- नेक आदमी का हर जबान पर नाम आएगा।
  स्वर्ण अक्षरों में उसका नाम लिखा जाएगा।।
- व्यक्ति का शुद्ध अतःकरण ईश्वर की वाणी है।
- जीवन बहुत थोड़ा है। सबसे प्रेमपूर्वक हिल-मिलकर चलो, सबसे अच्छा बर्ताव करो। अमृत का विस्तार कर जाओ। विष की बूंद तक कहीं न डालो। प्रेमपूर्वक व्यवहार ही अमृत है तथा द्वेषपूर्ण व्यवहार विष है। कोई भी मिले तो प्रेमपूर्ण सरल व्यवहार से उसके हृदय में अमृत भर दो। हृदय से विष को निकालकर अमृत भर लो और पग-पग पर केवल वही अमृत वितरण करो।
- आत्मविश्वास दिव्य जीवन प्रदान करता है।
- अपने और परायों में कोई भेद न समझूं, मेरे मालिक अपने सिवा किसी और का मुहताज न रख।

माता-पिता की सेवा–लक्ष्य हर सन्तान का

माता-पिता से ऊपर कोई नहीं। भगवान का दर्जा मिला है इन्हें। बच्चे माता-पिता के चरणों में बैठकर जो मांगें, उसी की प्राप्ति सम्भव है। श्री विलायतीराम भाटिया ने माता-पिता के विषय में निम्न 15 बिन्दु प्रस्तुत किए हैं। जरूरी नहीं कि हम श्रवण कुमार बनें। फिर भी अपने कर्त्तव्य को निष्ठापूर्वक पूरा जरूर करें। तभी मिलेंगी उनकी आसीसें भी–

1. तुम और सब-कुछ भले ही भूल जाना, मगर अपने माता-पिता को कभी मत भूलना।
2. उनके तुम पर अनगिनत उपकार हैं, उन्हें हमेशा याद रखना।
3. न जाने कितने देवी-देवताओं की मनौती मानने के बाद उन्हें तुम्हारा मुख देखने को मिला, ऐसे पुण्य आत्मा गुरुजनों के कलेजों को पत्थर बनकर न छेदना।
4. उन्होंने अपने मुख का ग्रास तुम्हारे मुख में देकर तुमको पाला-पोषा है, इस प्रकार अमृत का दान देने वालों के प्रति कभी विष न उगलना।
5. तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें लाखों प्रकार से लाड़ लड़ाया है और तुम्हारी सब इच्छा पूर्ण की हैं। इस प्रकार तुम्हारी इच्छाओं को पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

करने वालों की इच्छाओं को भूलकर भी मत ठुकराना।

6. भले ही तुम लाखों रुपए कमाते हो, लेकिन अगर माता-पिता की आत्मा को तुमने तृप्त नहीं किया तो तुम्हारे कमाए हुए लाखों रुपए राख के समान हैं।
7. अगर तुम अपनी संतान से सेवा की आशा रखते हो, तो तुम जिनकी संतान हो, उनकी सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।
8. तुम माता-पिता के प्रति जो कुछ करोगे, उसका बदला तुम्हें अवश्य मिलेगा, क्योंकि यह घटनाचक्र संसार है।
9. याद रखो तुम्हारे माता-पिता ने स्वयं गीले बिस्तरों पर सोकर तुम्हें सूखे बिस्तरों पर सुलाया था, उनके अमृत रस से भरे नेत्रों को भूलकर भी कभी आंसुओं से गीला नहीं करना।
10. जिन्होंने तुम्हारे मार्ग में सदा प्रेम प्रसून बिछाए हैं, उनके मार्ग के कभी भी कांटे न बनना।
11. धन खर्चने से भले ही और सब-कुछ मिल जाए, परन्तु गए हुए माता-पिता कभी नहीं मिलते, एक क्षण के लिए भी उन माता-पिता के चरणों की स्मृति को न भूलना।
12. दु:ख सहना मां-बाप की खातिर,
फर्ज तो है एहसान नहीं,
कर्ज है उनका तेरे सिर पे
भिक्षा या कोई दान नहीं।
13. माता-पिता के चरण छुए जो
चार धाम तीर्थ पा जाए,
फल जो आशीष वो दिल से दें,
भगवान से भी टाला न जाए।
14. जिन माता-पिता की सेवा कीन्हीं,
तिन तीर्थ दान किये न किये।।
15. जिन्होंने तुम्हारे लिए इतना धन परिश्रम से कमाकर तुम्हें अपने पांव पर खड़ा होने के काबिल बनाया है, तो क्या वो भुलाने के काबिल हैं?
    - तीन चीजें जीवन में एक बार मिलती हैं—मां, बाप और जवानी।
    - तीन चीजों को कभी छोटा मत समझो—बीमारी, कर्जा और शत्रु।
    - धन दान बिना, तन प्राण बिना, जीवन ज्ञान बिना व्यर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

- ❖ भगवान आपसे यह नहीं पूछेंगे कि समाज आपको कितना अच्छा कहता था, भगवान पूछेंगे कि आप कितने अच्छे थे।
- ❖ ईश्वर को पाने के लिए और हमेशा अमर रहने वाली खुशी को प्राप्त करने के लिए गरीबों से प्यार करो तथा दुखियों की सहायता करो। इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- ❖ वर्तमान का सदुपयोग करना ही विकास का मूल है।
- ❖ तीन चीजें दूसरा नहीं ले सकता–अक्ल, चरित्र, और हुनर।
- ❖ दुखी व्यक्तियों को देखकर करुणित हों, सुखी को देखकर खुश हों।
- ❖ मानव जीवन की सफलता केवल मानव शरीर धारण कर लेने में ही नहीं है अपितु मानवता धारण करने में है। जिस भौतिक देह का मनुष्य गर्व करता है, उस देह की वास्तविकता क्या है?

इस शरीर को जानिए, मूल्य बनता है 4.94 रुपए

1. एक प्रौढ़ मनुष्य के शरीर में जितनी चर्बी है, उससे साबुन की सात टिक्कियां बन सकती हैं।
2. मनुष्य के शरीर में जितना लोहा है उससे साधारण माप की एक कील बन सकती है।
3. मानव शरीर में शक्कर की मात्रा इतनी है कि चाय की छह प्यालियां बनाई जा सकती हैं।
4. चूना इतना है कि उससे गुड्डे-गुड़ियों के आधे दर्जन घरौंदों में सफेदी की जा सकती है।
5. फास्फोरस इतना है कि उससे दियासलाई की 50 डिब्बियां बनाई जा सकती हैं।
6. मैग्नीशियम इतना है उससे दवा की एक खुराक बन सकती है।
7. गंधक इतना है कि यदि उसे कुत्ते के शरीर पर मल दिया जाए तो मक्खियां निकट नहीं आ सकतीं।
8. पानी की मात्रा भी लगभग 13 गैलन है।
9. यदि इन वस्तुओं को अलग-अलग बेचा जाए तो इनका मूल्य 4 रु० 94 पैसे हो सकता है।
10. अब तुम स्वयं सोचो कि इस मानव देह का मानवता के बिना क्या मूल्य है? केवल 4 रु० 94 पैसे मात्र।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

इसलिए सदैव मानवता के पुजारी बनो, क्योंकि मानवता के बिना इस नश्वर शरीर का कोई मूल्य नहीं है।

सद्गुरू कहें पुकार

तन माटी का महल है, छार मिले छन माहिं।
चार जने कंधे धरें, मरघट पर ले जाहिं।।
जार बार तन फूंकिया, होगा हाहाकार।
चेत सके तो चेत ले, सद्गुरु कहें पुकार।।

- ❖ ऋषियों ने इस मानव देह को कंचन काया भी कहा है। इसे चलता-फिरता मल का भाण्डा भी कहा है। मल का भाण्डा और भाण्डे में भी मल है अर्थात् कर्त्तव्य परायण व्यक्ति का शरीर कंचन काया और कर्त्तव्य विमुख व्यक्ति का शरीर मल का भाण्डा कहा है।
- ❖ मनुष्य जीवन के रहते यदि अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा परमात्मा को जानकर आत्मसाक्षात्कार करके देह का त्याग करता है तो उसकी देह ही कंचन काया है, अन्य सभी तो मल-मूत्रादि गन्दगी से भरे चलते-फिरते मल के भाण्डे हैं।
- ❖ ध्यान रहे कि अनेक जन्मों की बिगड़ी हुई जीवन-यात्रा आज बन सकती है, किन्तु यदि आज भी बिगड़ी तो आगे बनने की आशा ही क्या है? अतः कहने का तात्पर्य यह है कि इन मिथ्या देह, गेह आदि से अहंता, ममता का त्याग करके ऐसी वस्तु से अहंता, ममता करो जिसमें आपकी अहंता, ममता सदैव स्थिर रहे।

देह का अहंकार क्यों?

इस मिथ्या क्षणभंगुर देह में अहंकार क्यों? किञ्चित विचार करो कि जिस चमड़े की पेटी रूपी देह का अहंकार किए बैठे हो, वह वस्तुतः क्या है? इसके अंदर हड्डियों का ढांचा है। मांस थोपी हुई है, नस-नाड़ियों से बंधा हुआ है। थूक, कफ, पित्त, पसीना तथा मलमूत्र आदि दुर्गन्धियों से भरा हुआ है। ऊपर से खून व पसीने से तर गीले चमड़े की चादर लपेटी हुई है। फिर इसमें सुन्दरता क्या है?

- ❖ देखकर मत भूलना इस बाहर की सफाई पर।
  वर्क सोने का लगा है, गोबर की मिठाई पर।।
- ❖ कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।
- ❖ जीवन में सफलता चाहने वालों को जीवन के एक-एक क्षण का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सदुपयोग करना चाहिए।

- मां बच्चे की पहली पाठशाला होती है। केवल मां ही निस्वार्थ भाव से सेवा करती है।
- निर्धनों और दुखियों पर जब अत्याचार होता है।
  तो बेड़ा पार करने के लिए कृष्ण अवतार होता है।।
- न तड़पने की इजाजत है न है फरयाद की
  यहीं घुट के मर जाऊं मरजी मेरे सैयाद की।
- गम न कर जो बादल घनेरा।
  किसके रोके रुका है सवेरा।।
- कोई लौटा नहीं खाली ऐ नाथ तेरे दर से।
  उदारता के लिए इतनी भीड़ हमने देखी।
  न लौटा आज तक निराश कोई आपके दर से
  तुम्हें देते नहीं देखा मगर झोली भरी देखी।।
- इबादत है दुखियों की इमदाद करना।
  जो नाशाद हों उनको दिलशाद करना।।
  खुदा की निमाज़ और पूजा यही है।
  जो बरबाद हों उनको आबाद करना।।
- या रब दिल दिया है तो तड़प भी दे जो दूसरों का गम बांट सके।
  मुझे इस दिल की चाह नहीं जो किसी के काम न आ सके।
- घर पड़ोसी का महक जाए चमन की तरह,
  तेरे आंगन से प्यार मुहब्बत की ऐसी खुशबू निकले।
- अगर दर्दे मुहब्बत से न इंसान परिचित होता।
  न मरने का ज्ञान होता, न जीने का मजा होता।।
- कारगिल युद्ध के शहीदों का देशवासियों को संदेश–

  हम न देखेंगे कल की बहार तो क्या
  तुमको वे बहारें दिखा जाएंगे।
  लौटकर आ सके न जहां में तो क्या
  याद बन के तो दिलों में आ जाएंगे।।
- माना कि सारे संसार को गुलो गुलजार न बना सके हम।
  कुछ कांटे तो कम किए हैं हमने गुजरे जिधर से।।
- न मर्द बनो अपने ही खानदान के लिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तुम रहो जिंदा सारे जहान के लिए।।

- उदारता करुणा व प्रसन्नता की जननी है।
- कामना का अर्थ है मन का बहिरंग वस्तुओं के प्रति आकर्षण।
- कैंचियां क्या काटेंगी पर हमारे,
  हम परों से नहीं हौसलों से उड़ा करते हैं।
- तीन चीजों में मन लगाने से उन्नति होती है—ईश्वर, परिश्रम और विद्या।
- तीन चीजें सदा याद रखें—सच्चाई, कर्त्तव्य और मौन।
- गीता चर्चा का नहीं, आचरण का शास्त्र है।
- उपवास का अर्थ है—'उप' माने निकट 'वास' माने बैठना अर्थात अपने स्वरूप के निकट बैठना।
- दान देने में आनन्द है—लेने में नहीं।
- यह पृथ्वी हमारी कर्मभूमि है।
- वर्तमान का सदुपयोग करना ही विकास का मूल है।

इस अध्याय में हमने कुछ विशेष बातों को प्रस्तुत किया है। इनमें श्री राम, श्रीकृष्ण, संत तुलसीदास, परउपकार, सुखों-दुखों के साधन, अनेक अमृत वचन, प्रेरणा बिन्दु, ज्ञान गंगा के कुछ छींटे, अनेक दोहे, शेर, कहावतें, प्रवचन, माता तथा पिता का महत्त्व, उनके प्रति हमारे कर्त्तव्य, शरीर का नश्वर होना, आत्मा का शाश्वत होना, आत्मसाक्षात्कार की प्रेरणा, जीवन यात्रा में सुधार, देह का गलत अहंकार, ईश्वर द्वारा निराश न करना, खाली हाथ नहीं लौटाना, इबादत का असर, औरों के लिए कुछ करें, रास्ते के कांटे हटाते जाएं, दूसरों की राह में रोड़ा न बनें, दान की प्रवृत्ति होना, आदि-आदि बहुत-सी बातों को एकत्रित कर इस अध्याय में रखा है। सभी ऊंची, सच्ची व सुच्ची बातें हैं। हमें चाहिए कि इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ें। फिर पढ़ें संतों, महापुरुषों के प्रेरणादायी तथा प्रेरक प्रसंग। उनके जीवन में बीती छोटी-छोटी घटनाओं को इस पुस्तक में समेटकर, अपनी राह आसान की है। अपना जीवन सुधारने का एक प्रयत्न है। हर व्यक्ति इनसे लाभ उठा सकता है।

कम से कम समय देकर आप महापुरुषों, संतों के जीवन की झलकियों को पढ़ व समझ सकते हैं। प्रत्येक घटना स्वतन्त्र है। उसका अगली या पिछली घटना से कोई लिंक नहीं। अतः पुस्तक का कोई भी पृष्ठ खोलकर आप कभी भी पढ़ सकते हैं। पुस्तक को अपने तकिए के पास रखें। जब समय मिले, थोड़ी-बहुत पढ़ लें। इतना करने से ही आचरण में परिवर्तन आता जाएगा। अच्छा व्यक्ति बहुत अच्छा बन जाएगा। यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी हमारी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सन्त-महात्माओं के आचरण को अपने जीवन में धारण करें

खेत में कुछ भी रोपने के लिए उसकी तैयारी करनी होती है। यदि बिना तैयारी पेड़ या बीज लगाना चाहेंगे तो वह शायद अंकुरित ही न हो। ठीक वैसे ही बड़े लोगों, देवताओं, महान पुरुषों, पीरों, फकीरों, संतों, साधुओं आदि के जीवन में घटित घटनाओं से सीख लेकर, इन्हें अपने जीवन में उतारने की भी तो तैयारी करनी जरूरी है। जैसा उनका आचरण था, वैसा स्वयं व्यवहार करने के लिए जानिए कुछ अमृत वचन। ईश्वर तथा उसकी सत्ता का महत्व। प्रकृति का योगदान। प्रभु के गुणों की स्तुति। किस गुरु ने कैसा उपदेश दिया। कैसे और क्या समझाया। इस प्रकार आप भगवान की मूर्ति को अपने हृदय में स्थापित कर मन को शुद्ध व पवित्र बनाकर, अपने जीवन को बुराइयों से बचाकर, निष्ठा करें कि आप उन सन्तों के जीवन को भली प्रकार समझेंगे। सीखेंगे। वैसा ही व्यवहार करने का प्रयास करेंगे। अति उत्तम आचरण करने का प्रयास करेंगे। निर्लिप्त होना सीखेंगे तथी निरीह पशु-पक्षियों की रक्षा करेंगे। दयावान बनकर परउपकार करने के लिए उपाय करेंगे। परम्पराओं का पालन करेंगे। संस्कृति को संजोए रखने का प्रयत्न करेंगे। पुस्तक में दिए सन्तों द्वारा बताए मार्ग पर चलने का संकल्प करेंगे, तो शुभ लाभ होगा ही।

❖ दीवाने झूमते हैं कृष्ण तेरी गली में
मस्ताने झूमते हैं कृष्ण तेरी गली में

❖ अद्वितीय पूर्ण पुरुष–
भगवान श्रीकृष्ण

आचार्य प्रेमजी के अनुसार–

संसार में जो सर्वाकर्षण है, संसार में जो सबसे सुन्दर है, संसार में जो सर्वशक्तिमान है वही श्रीकृष्ण है।

1. बाल्यकाल में अठखेलिया करता– नटखट कृष्ण
2. गैयों को चराता-पालता– गोपाल कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

3. बन्सी की मधुर धुन बजाता– बंसी बजैया कृष्ण
4. अठखेलियां करता, हंसता-हंसाता– मनमोहन कृष्ण
5. कंस जैसे पापियों, दुष्टों का संहारकर्ता– काल रूप कृष्ण
6. मां-बाप को बन्धनों से मुक्त करता– दु:खहर्ता कृष्ण
7. द्रौपदी की लाज रखता– बेसहारों का सहारा कृष्ण
8. दरिद्र ब्राह्मण मित्र की दरिद्रता हरता– प्यारा सखा कृष्ण
9. शिशुपाल जैसे दुर्जनों से मर्यादा बर्तता– न्यायप्रिय कृष्ण
10. अपनी प्रजा को सदा सुख में रखता, परिवार-सा चाहता– सर्वप्रिय राजा कृष्ण
11. दूत बनकर संदेश ले जाता– शांतिदूत कृष्ण
12. धर्म पालन को सर्वोपरि बतलाता– धर्मराज कृष्ण
13. योग को सरल और स्पष्ट करता– योगीराज कृष्ण
14. कर्म के महत्त्व को बतलाता– कर्मयोगी कृष्ण
15. युक्ति-युक्त जीने की कला सिखाता– नीतिवान कृष्ण
16. शस्त्र और शास्त्रों में निपुण– सुदर्शनधारी कृष्ण
17. अपने भक्तों का सिरमौर– मोरपंखी कृष्ण
18. करोड़ों दिलों में धड़कता श्रद्धा से– भगवान कृष्ण
19. गीता का अमर सन्देश सुनाता– कृष्णावतार कृष्ण
20. युगों-युगों में अवतरित– युगपुरुष कृष्ण

श्री कृष्णलाल, प्रधान कहते हैं–

❖ निर्धनों और दुखियों पर जब अत्याचार होता है।
तो बेड़ा पार करने के लिए कृष्ण अवतार होता है।।

❖ न तड़पने की इजाज़त है न है फरयाद की।
यहीं घुट के मर जाऊं मरजी मेरे सय्याद की।।

❖ किसी के दर्द में हमदर्द व गमखार हो जाएं।
किसी की कांटों भरी ज़िंदगी में गुलो गुलजार हो जाएं।।
जिसे कुदरत मिले ऐसी, उसे इंसान कहते हैं।
सेवा भाव हो जिसमें, उसे महान कहते हैं।।

❖ जितने भी संसार में अवतार या युगपुरुष हुए उनमें केवल भगवान कृष्ण ने ही प्रेम प्यार को प्रभु प्राप्ति का मार्ग बताया–
प्रेम और मुहब्बत के सिवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दुनिया की हर चीज़ फानी है।
यह एक ऐसी सच्चाई है
जो हर बुद्धिमान ने मानी है।।

❖ जब श्रीकृष्ण प्रेम की बांसुरी बजाते थे तो सारी प्रकृति मोहित हो झूम उठती थी। परन्तु मेरे भाइयो—
हाय रे भूल की, संदेश तेरा भूल गए।
बेवफा बन गए हम, प्रेम करना भूल गए।।

❖ इसलिए समय की मांग है कि हम एक-दूसरे के निकट आएं। अपनी समस्याओं पर विचार करें। जिस परिवार में खुलकर प्रेम से बातचीत होती है वहां सदा ही सुख, शान्ति और समृद्धि का वास होता है।

मेरे भाई बहिनों जीना सीखो।
दूसरों के आंसू पोंछना सीखो।।
घाव लगाना क्या कठिन है।
घाव किसी का सीना सीखो।।
सीख लो दुनिया में यह उल्फत का फन।
काट दो विषैले यह घृणा के फन।।
जो प्रीत और प्यार के उठाके झंडे चले।
बन सके तो उस मुहब्बत का दीवाना बन।।

❖ भगवान कृष्ण ने यह भी कहा कि ऐ मनुष्य, तू अपनी समस्या के समाधान के लिए कुरुक्षेत्र तो कभी भी जा सकता है परन्तु तेरी बुद्धि इसी में है कि अपनी समस्या का समाधान हस्तिनापुर या इन्द्रप्रस्थ में ही ढूंढ ले अर्थात् समस्या का समाधान बातचीत, समझने और समझाने से ही होना चाहिए। सद्बुद्धि और कुबुद्धि, मित्रता तथा शत्रुता में केवल एक क्षण का अन्तर होता है।..

रुख हवाओं का भी देखो आग लगाने वालो।
कोई चिंगारी न उड़कर तेरे घर तक पहुंचे।।

❖ भगवान कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सारे संसार को कर्म की महानता बताई है। प्रभु ने मनुष्य को कर्म तथा बुद्धि की शक्ति दी है।

❖ संसार के सबसे बड़े वैज्ञानिक न्यूटन ने भी कर्म तथा उसके फल को माना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

❖ ऋग्वेद का कथन है–

अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगा लेने से
व्यक्ति का मन प्रसन्न तथा संतुष्ट रहात है।

स्वामी गीतानन्द 'भिक्षु'जी के प्रवचन

❖ जीवन से ही सब-कुछ मिलता है, और मिल सकता है। किन्तु सब-कुछ देकर भी जीवन नहीं मिल सकता, अतः जीवन का सदुपयोग करो।

❖ सुख भोग से मिलता है,
भोग भाग्य से मिलता है,
भाग्य कर्म से मिलता है,
इसलिए सत्कर्म करें।

❖ शान्ति सदा विचारों से मिलती है,
सद् विचार सन्तों से मिलते हैं,
संत ईश्वर की कृपा से मिलते हैं,
इसलिए सत्संग करो।

❖ निरन्तर ज्ञानोपार्जन करना सात्विक तप है।

सन्त वचन द्वारा श्री रितेशजी।

क. गंगा नहाये जो नर 'तर' हैं
मेंढक क्यूं न 'तर' हैं, जिनके गंगा में घर हैं?

ख. शंख बजाये जो नर 'तर' हैं,
गधे क्यूं न 'तर' हैं जिनके शंख जैसे सुर हैं?

ग. जट बढ़ाये जो नर 'तर' हैं
तो मोर क्यूं न 'तर' हैं जिनके लम्बे-लम्बे पर हैं?

घ. कहत कबीर सुनो भाई साधो,
वो नर 'तर' हैं, जिनके ह्रदय हर हैं।

धर्म व ज्ञान की अलख जगाई भारत ने पूरे विश्व में

आइए, जानते हैं कि भारत ने पूरे विश्व को किस-किस क्षेत्र में ज्ञान दिया तथा विश्वगुरु का ओहदा पाया। यह हम नहीं कहते, दुनिया कहती है–

1. भारत विश्व सभ्यता और संस्कृति का उद्गम स्थल है।
2. वेदों के रूप में परमात्मा की वाणी ऋषि-मुनियों के माध्यम से प्रकट हुई और उस पर आधारित मानव विकास का जो क्रम आरम्भ हुआ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

वह निरंतर बढ़ता ही गया।

3. धर्म, दर्शन, विज्ञान, गणित, कला, साहित्य, संस्कृति व सभ्यता के क्षेत्र में भारत ने आश्चर्यजनक उन्नति की।
4. धर्म और मज़हब अलग-अलग संकल्पनाएं हैं। धर्म सनातन है, जब कि मज़हब (सम्प्रदाय) सामाजिक।
5. धर्मयुद्ध क्रूसेड या जिहाद नहीं। भारत में कभी क्रूसेड या जिहाद नहीं हुआ। विश्व के किसी भी देश में धर्मयुद्ध नहीं हुआ।
6. विश्व की सभी दर्शन पद्धतियां प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारतीय दर्शन से प्रभावित हैं।
7. प्राचीन काल में हमारा विज्ञान बहुत उन्नत अवस्था में था। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत की खोज भास्कराचार्य ने की थी, न कि न्यूटन ने। (भास्कराचार्य पहले हुए थे, न्यूटन बाद में)
8. गणित के क्षेत्र में भारत की विश्व को तीन महत्त्वपूर्ण देन हैं–
   क. दशमलव पद्धति
   ख. शून्य
   ग. दस आधारभूत अंक
9. सुश्रुत शल्य चिकित्सा पद्धति (सर्जरी) के जनक थे। सुश्रुत संहिता प्राचीन अरब दुनिया में किताबे सुररूद के नाम से मशहूर थी। वैसे आधुनिकतावादियों को इस तथ्य पर हैरानी हो सकती है, क्योंकि आज ऐलोपैथी के एक अंग के रूप में सर्जरी यूरोप में ही विकसित हुई, ऐसा माना जाता है।
10. शाकाहार भारत की उत्कृष्ट परंपरा और उच्च स्तरीय पद्धति का प्रतीक है। भारत ने ही विश्व को शाकाहार अपनाने का मार्ग प्रशस्त किया है। संसार में सर्वत्र सहस्रों-लाखों लोग सुंदर और स्वस्थ जीवन के लिए शाकाहार को स्वीकार कर रहे हैं। (संकलन–भारतीय वैलफेयर ट्रस्ट सोसायटी स्मारिका–2002)

आम आदमी से प्रतिज्ञा करते हैं ईश्वर–कैसे?

अपनी कविता 'भगवान की प्रतिज्ञा' में श्री हरीश भाटिया हम दुनियावी लोगों को ईश्वर में आस्था रखकर उनकी आराधना करने, दीन-हीनों के लिए काम करने, त्याग करने तथा प्यार बाँटने का बहुत अच्छा संदेश देते हैं। ऐसे ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संदेश आपको संतों-फकीरों के जीवन में घटित अनेक घटनाओं में मिलेंगे। जो इसी पुस्तक में दिए गए हैं। उन्हेंने अलग-अलग घटनाओं में अलग-अलग संदेश दिये।

ईश्वर कहते हैं–
मेरे मार्ग में पैर रखकर तो देख
तेरे सब मार्ग न खोल दूं तो कहना
मेरे लिए खर्च करके तो देख
तेरे लिए कुबेर के भण्डार न खोल दूं तो कहना
मेरे लिए कड़वे वचन तो सुनकर देख,
कृपा न बरसे तो कहना
मेरी तरफ आ के तो देख
तेरा ध्यान न रखूं तो कहना
मेरी बात लोगों से करके तो देख
तुझे मूल्यवान न बना दूं तो कहना
मेरे चरित्रों का मनन करके तो देख
ज्ञान के मोती तुझमें न भर दूं तो कहना
मुझे अपना मददगार तो बना के देख
तुम्हें सबकी गुलामी से न छुड़ा दूं तो कहना
मेरे लिए आंसू बहाकर तो देख
तेरे जीवन में आनन्द के सागर न बहा दूं तो कहना
मेरे लिए कुछ बन के तो देख
तुझे कीमती न बना दूं तो कहना
स्वयं को न्यौछावर करके तो देख
तुझे मशहूर न करा दूं तो कहना
मेरा कीर्तन करके तो देख
जगत का विस्मरण न करा दूं तो कहना
तू मेरा बनके तो देख
हर एक को तेरा न बना दूं तो कहना

- इरादे की मज़बूती का नाम तकदीर है।
- युद्ध में जय-पराजय की लहरें कई बार आती-जाती रहती हूं, किंतु स्थायी विजय उसी की होती है, जिसमें शौर्य के साथ धीरज भी होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

- संत शेख सादी ने कहा था—यदि चिड़ियां एका कर लें तो शेर की खाल खींच सकती हैं।
- महान संत सुकरात ने कहा था—
  जब मैं लड़कपन में था तो सब हमउम्र लड़कों का नेता बना रहा। कहा करता कि मैं सब-कुछ जानता हूं। जो चाहो पूछ लो। मेरा दबदबा बना रहा।
  जब मैं युवक हुआ तो कहने लगा—मैं कुछ जानता हूं कुछ नहीं—अर्थात् सब-कुछ नहीं जानता। मैं हर प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम नहीं।
  और...जब मैं और बढ़ता गया, बड़ा होता गया मेरी सारी गलतफहमियां दूर होती गईं। आज में वृद्ध हो चुका हूं। अब मैं डंके की चोट पर यह कह सकता हूं कि तब मैं गलत था। आज मैं स्वीकार करता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता। कुछ भी नहीं जानता। यही सच्चाई है।
  (इसे यों भी कह सकते हैं, वृक्ष की टहनियों पर जैसे-जैसे फल लगने व बढ़ने लगते हैं, ये झुकती जाती हैं।)
- दम्भ और कुमति, दोनों साथी हैं। जिसके यहां इन दोनों के पैर पड़ जाते हैं वहां सर्वनाश समीप आ खड़ा होता है।
- अधिक बोलने वाला अपने को अधिक बुद्धिमान समझता है, पर संसार के पास उसके लिए एक ही शब्द है—मूर्ख।
- जीवन एक अवसर है, इसे खोइये मत।
- जो अपने स्वार्थ को लेकर ही दिन-रात जीते हैं उनमें और पशु में अधिक अंतर नहीं है। मनुष्य तो वे हैं जो दूसरों के सुख के लिए अपना जीवन संकट में डाल देते हैं।
- मौन में मन शांत व चित्त प्रसन्न रहना चाहिए।
- चित्त की शुद्धि हो जाने से शरीर में आनन्द संचार होता है।
- त्याग का अर्थ—अपना सर्वस्व सत्य को अर्पण करना।
- युद्ध से बड़ी पीड़ा इस धरती पर कोई दूसरी नहीं है।
- जर्मन कहावत है—एक मूर्ख दूसरे मूर्ख की प्रशंसा करता है।
- जो दूसरों की चुगली करके अपने मालिक को खुश रखने की कोशिश करते हैं वे ऐसी बारूद पर बैठे हैं जिसमें कभी भी आग लग सकती है, क्योंकि चुगली की पोल एक रोज खुल जाती है।
- युद्ध में जिसका साथी हौसला होता है, उसे कोई पराजित नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सकता।

- गुरु या अध्यापक वह होता है जो समाज में सबसे अधिक सम्मान व गौरव पाता है–बिन मांगे। भारतीय संस्कृति तो गुरवे नमः मानती आई है। मानती रहेगी। गुरुजन को ऋषि तथा ईश्वरीय ज्ञान का ज्ञाता जाना जाता है। माता का दर्जा भी गुरु-समान है। वही पहला पाठ पढ़ाती है अपने शिशु को। मां के कारण समाज समृद्ध हो जाता है।
- समय ही जीवन है। समय का ठीक उपयोग ही जीवन का सदुपयोग है। यह कार्य केवल उत्तम शिक्षा द्वारा ही संभव है क्योंकि उत्तम शिक्षा द्वारा मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है।
- गुरु, अध्यापक, आचार्य, प्रचारक, उपदेशक ही जनशक्ति को सही मार्ग की ओर प्रेरित कर सकते हैं।
- माता तथा गुरु बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जिससे उनके अन्दर आत्मविश्वास पैदा हो।

स्वामी गीतानंदजी महाराज भिक्षु का संदेश

- मनुष्य के पास सर्वश्रेष्ठ संपत्ति जीवन है जो कि प्रति क्षण एक-एक श्वास करके निकलता जा रहा है। अतः जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।
- प्रातः जागने के बाद तथा उठने से पहले, दोनों के मध्य में जितने समय बिस्तर पर पड़े हैं, उतने समय पर्यन्त भगवत् चिंतन, गुरुदेव का ध्यान तथा गुरुमन्त्रोपदेश का जप करते रहो। इससे सम्पूर्ण दिन सुख-शान्ति से व्यतीत होगा।
- रात्रि को लेटने के बाद तथा नींद आने से पूर्व, दोनों के मध्य में जब तक जागते रहें तब तक व्यर्थ चिन्तन-चर्चा करने की अपेक्षा भगवत् चिंतन-चर्चा एवं गुरुमन्त्रोपदेश का जप करके सोयें। इससे रात्रि को नींद अच्छी आएगी तथा स्वप्न में गुरुदेव एवं भगवान के दर्शन भी होंगे।

इस अध्याय में पाठकों ने भगवान श्रीकृष्ण के गुणों से जुड़े नामों की स्तुति, भगवान कृष्ण का गुणगान, इच्छाओं पर अंकुश करने का लाभ, स्वामी गीतानंद भिक्षुजी के उपदेश, धर्म व ज्ञान के क्षेत्र में भारत का विश्वगुरु होना की सत्यता, ईश्वर का अपने भक्तों को आश्वासन तथा सहायता की प्रतिज्ञा, बहुत से अमृत वचन आदि के विषय में पढ़ा। ये इसलिए आवश्यक थीं क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूरी पुस्तक में आप जिन संतों-महात्मा, पीरों-फकीरों, साधुओं तथा मुनियों आदि के जीवन के प्रेरक प्रसंग पढ़ेंगे उन्होंने इन सब गुणों को अपने जीवन में पूरी तरह धारण कर रखा था। इन्हीं गुणों के साथ वे जीवित रहे। उनका यह प्रैक्टीकल उपदेश भी है कि आप सब उनके पदचिह्नों पर चलें। उनके जीवन की शिक्षाओं को स्वयं पर धारण करो। अपनी जीवन पद्धति बदलो। स्वार्थ की प्रवृत्ति को त्यागो। लोगों के हमदर्द बनो। पशु-पक्षी, वनस्पति की रक्षा करते हुए प्रकृति का संरक्षण करो। इससे पर्यावरण उत्तम होगा तथा आप सुखपूर्वक रह पाएंगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

न्यायशास्त्र की पांडुलिपि फेंक दी गंगा में चैतन्य ने

बालक का नाम था निमाई। वह बहुत कुशाग्र बुद्धि था। बाद में यही बालक चैतन्य महाप्रभु के रूप में ख्यात हुआ।

बात तब की है जब निमाई की आयु सोलह वर्ष थी। उनके विचार पूर्णत: परिपक्व हो गए थे इस शैशव काल में ही। इस किशोर ने इस छोटी आयु में न्यायशास्त्र पर एक सम्पूर्ण पुस्तक लिख डाली। जिसका स्वागत भी हुआ।

निमाई का एक परम मित्र था–रघुनाथ। वह आयु में निमाई से बड़ा था। उसे भी पता चला कि निमाई ने एक पांडुलिपि तैयार की है। देखने की इच्छा हुई।

निमाई ने कहा–चलो चलते हैं गंगा किनारे। नौका विहार करते-करते मैं अपनी अप्रकाशित पुस्तक के मुख्य-मुख्य अंश तुम्हें सुना दूंगा। फिर चाहो तो घर भी ले जाना...और....अच्छी तरह पढ़ भी लेना।

नाव में बैठ निमाई पुस्तक को पढ़ता गया। इससे रघुनाथ का दिल बैठता गया। उससे अब रहा न गया। कह दिया–'मित्र निमाई! तुमने तो अपनी पुस्तक कम समय में पूरी कर ली है, जबकि मैं इसी विषय पर अनेक वर्षों तक अथक प्रयत्न करके अपनी पांडुलिपि पूरी कर सका। सफलता तो मिली लेकिन बेकार! दोस्त! तुम्हारी पुस्तक के सामने मेरी पुस्तक तो कुछ भी नहीं।...न ही पाठक उसे इतनी पसंद करेंगे, जितनी तुम्हारी।' कहते-कहते रघुनाथ की आंखों से आंसू टपकने लगे।

'अरे बस! इतनी-सी बात पर अधीर हो रहे हो। मित्र के लिए तो जान की बाजी लगाने में भी मैं पीछे नहीं रहने वाला।...यह तो पुस्तक की बात है। लो गई...यह गई।' कहते-कहते निमाई ने न्यायशास्त्र पर परिश्रम के साथ अति उत्तम लिखी पुस्तक को गंगा में फेंक दिया। पांडुलिपि डूबती गई नदी में।

निमाई इसी त्याग की प्रवृत्ति को जीवन भर पालते रहे और चैतन्य महाप्रभु पद पर जा पहुंचे अपने पवित्र न उच्च आचरण के कारण।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"इस विश्व में बहुत से लोग ऐसे हैं, जिनसे मुझे बहुत सीखना है"–शंकराचार्य

शंकराचार्य को चाटुकारिता बिल्कुल पसंद नहीं थी। उनके एक शिष्य ने उनसे कहा–"मैं बहुत बार चकित हो जाता हूं कि आपने इतना अधिक ज्ञान कैसे अर्जित किया। मुझे नहीं लगता कि आपके बराबर किसी और के पास ज्ञान होगा...आप तो ज्ञान का भण्डार हैं गुरुदेव।"

गुरु-शिष्य का यह वार्तालाप समुद्र के तट पर हो रहा था। शिष्य की बात ने स्वामी शंकराचार्य को अप्रसन्न कर दिया। उन्होंने कहा–"तुम्हें किसने बताया कि मेरे पास ज्ञान का भंडार है? अथवा मेरे समान और कोई विद्वान नहीं?" कहते-कहते उन्होंने अपने हाथ की सूखी लकड़ी को समुद्र के पानी में डुबोया। फिर बाहर निकालकर शिष्य से कहा–"देखो! इस सागर में जल का अथाह भण्डार है। मगर इसमें डूबने पर भी यह लकड़ी चन्द बूंदें पानी ग्रहण कर पाई है। ठीक इसी प्रकार, ज्ञान के अथाह सागर से मैं तो कुछ बूंदें ही हासिल कर सका हूं। मुझे इस ज्ञान सागर से अभी बहुत कुछ सीखना है। प्राप्त करना है।...इस विश्व में बहुत लोग ऐसे हैं, जिनका ज्ञान मेरे से बहुत अधिक है।...मुझे उनसे भी काफी कुछ ग्रहण करना है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विद्वान बुढ़िया ने राजा भोज तथा कवि माघ को लाजवाब कर दिया

भेष बदलकर निकले राजा भोज तथा कवि माघ का सामना एक ऐसी बुढ़िया से हुआ कि वे उसे जीवन भर नहीं भूल पाए। वे अपना रास्ता भूल गए थे। झोंपड़ी के बाहर खड़ी बुढ़िया से पूछ बैठे–"यह रास्ता किधर जाता है?"

"यह रास्ता तो कहीं नहीं जाता, इस रास्ते पर यात्री जाते हैं।"

"हम यात्री ही हैं।" राजा ने धीरे से कहा।

"मैं नहीं मानती। यात्री तो केवल दो ही हैं...सूर्य तथा चन्द्रमा।"

"जी। हम अतिथि हैं।"

"फिर गलत। दो ही तो अतिथि हैं धन तथा यौवन। आप कौन?"

राजा से रहा न गया, बोले–"हम राजा हैं।"

"ओह! कौन से राजा? इन्द्र या यम; ये दो ही राजा हैं।"

"बुढ़िया मां हम क्षमावंत हैं।"

"पृथ्वी तथा नारी–ये दो ही क्षमावंत हैं। बताओ आप कौन हैं?"

"माता! अधिक मत पूछो। हम परदेशी हैं।"

"मेरे विचार में परदेशी भी दो हैं, जीव एवं वृक्ष पर्ण।"

"बुढ़िया। क्यों घेरती हो। हम गरीब हैं।"

"मैं कैसे मान लूं। गरीब भी दो ही होते हैं-बकरी व लड़की।"

"बुढ़िया! मत परेशान करो। हम हार गए।"

"ओह! तो तुम नहीं जानते कि हारने वाले भी दो ही होते हैं–एक कर्जदार, दूसरा वधू का पिता। आप दोनों में से एक भी नहीं लगते।"

यह सुनकर राजा भोज तथा माघ कवि, जो अपने आपको काफी बुद्धिमान माना करते, अब अवाक् खड़े हो गए। बुढ़िया ने भी भांप लिया कि इनके पास कहने को कुछ नहीं। तब उसने कहा–"मैं जानती हूं कि तुम कौन हो। आप राजा भोज हैं और...यह साथ वाले माघ कवि...आप उस रास्ते पर चलते रहो। सीधे उज्जैन पहुंच जाओगे।" उनका भेष बदलकर चलना भी बुढ़िया से छिपा नहीं रहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"खून का बदला खून नहीं"–महर्षि पराशर

भगवान शिव के भक्तों में पराशर ऋषि का नाम काफी आदर के साथ लिया जाता है। उन्हें अपनी मां से पता चला कि उनके पिता तथा भाइयों का राक्षसों ने वध कर दिया। उस समय पराशर गर्भ में थे। उन्हें यह भी बताया गया कि यह सब विश्वामित्र के श्राप के कारण ही राक्षसों ने किया। तब तो वह आग-बबूला हो उठे। अपने पिता तथा भाइयों के–यों किए वध का बदला लेने का निश्चय कर लिया। इसके लिए भगवान शिव से प्रार्थना कर आशीर्वाद भी मांग लिया।

जब पराशर के दादा महर्षि वशिष्ठ को इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने युवा पोते पराशर को पास बुलाया। समझाते हुए कहा–"राक्षसों ने तुम्हारे परिवारजनों को मारा, अब तुम उनका वध करने की सोच बैठे हो। तुमने बदला जो लेना है।...किन्तु।"

"कहिए। पितामह कहिए। चुप क्यों हो गए?"

"मैं कह रहा था...यदि तुम राक्षसों को मार देते हो तो राक्षसों के व्यवहार तथा तुम्हारे व्यवहार में क्या अन्तर हुआ? शायद जरा भी नहीं...दोनों का आचरण एक जैसा है न?"

तब ऋषि पराशर ने झुककर कहा–"दादाश्री! मैं आपको वचन देता हूं कि मैं खून का बदला खून से नहीं लूंगा।...यह मेरा आपको वचन है।"

यह बात दैत्यों के कुलगुरु महर्षि पुलस्त्य ने सुनी। वह प्रकट हुए। पराशर को आशीर्वाद दिया। बोले–"बेटा! तुमने राक्षसों को क्षमा करने के लिए अपने क्रोध पर संयम किया है। यह देवोचित आचरण है, हम प्रसन्न हुए...हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम धर्मशास्त्रों के महान ज्ञाता बनोगे। खूब प्रसिद्धि पाओगे। लोग तुम्हारा सम्मान करेंगे।"

आर...समय आन पर यह आशीर्वाद फलीभूत हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गोरा कुम्हार ने मिट्टी रौंदते हुए बालक को भी रौंद डाला

गोरा कुम्हार की परमात्मा में इतनी आस्था थी कि वह काम करते हुए भी भगवान भजन में रहते। कीर्तन भी चलता रहता, काम भी। बहुत बार वह देहाध्यास ही भूल जाते। एक बार तो हद हो गई। मिट्टी रौंदते-रौंदते अपने नन्हे बालक को भी इसी में रौंद दिया। उन्हें कुछ पता नहीं चला। पत्नी ने दूर से देखा। भागी। क्रोध में आकर कह दिया–"आज के बाद मुझे स्पर्श भी मत करना।"

"ठीक है। नहीं करूंगा।"

और वह पत्नी के कभी करीब नहीं आए।

ईश्वर में अनन्य भक्ति। उसी में रमे रहने लगे। पत्नी पश्चाताप करने लगी। किन्तु गोरा कुम्हार ने अपनी पत्नी की ओर आंख भरकर भी नहीं देखा...कहती थी–स्पर्श नहीं करना...मैंने भी कह दिया था...नहीं करूंगा...नहीं तो नहीं। यही व्यवहार चलता रहा।

पत्नी अपनी गलती मान रही थी। किन्तु पति टस से मस नहीं हुआ। उसे चिंता हुई वंश की। वंश कैसे चलेगा? वह सोचा करती।

पत्नी ने अपने पिता को राजी कर लिया। अपनी छोटी बहन का विवाह गोरा से करवा दिया। पत्नी ने अपने पति की अपने पिता से कभी शिकायत नहीं की थी। दूसरी बेटी का हाथ थमाते हुए कह दिया–"गोरा दामादजी! जैसे मेरी पहली बेटी को रखा वैसे ही दूसरी को भी रखना।"

"जी। जो आज्ञा।"

बस फिर क्या था। गोरा कुम्हार ने अपनी दोनों पत्नियों को समभाव से रखना शुरू किया। न एक को छूता न ही दूसरी को। कई दिन बीत गए।...दोनों पत्नियों ने योजना बना ली। एक रात दोनों ने पति का हाथ पकड़कर अपने-अपने वक्ष पर रखा और रखे रखा। पति की ओर से कोई क्रिया नहीं। कोई आकर्षण नहीं। बल्कि गोरा ने अपने हाथों को दोषी मानकर उन्हें सजा दे दी। वे दोनों देखती रह गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत की प्रार्थना स्वीकार कर प्रभु ने दुष्टों की बुद्धि को सद्मार्ग दिया

नदी में नौका उतर चुकी थी। इसे पार किनारे जाना था। इसमें बैठे सभी लोग नौका-विहार का आनन्द ले रहे थे। उसी नौका में एक संन्यासी अपनी संध्या कर रहा था। वह प्रभु प्रेम में डूब गया था। आंखों से आंसू बहने लगे। प्रेम अश्रु थे ये।...नौका जा रही थी। विदेशी तट पर जा रुकना था इसे।

नौका में बैठे सहयात्रियों ने उसे पाखण्डी समझा, संन्यासी को बार-बार तंग करने लगे। उसकी पूजा में व्यवधान डालने लगे। कभी कटाक्ष करते। एक-दो बार तो उसे थप्पड़ भी मार दिया। एक घमण्डी आवारा ने तो उसके बाल भी नोच दिए। सन्त ने अपनी आराधना जारी रखी। उनकी हरकतों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे वे लोग और अधिक बौखला उठे।

ठीक इसी समय आकाशवाणी हुई—"बेटा! अगर कहो तो नाव उल्ट दूं? इन सबको डुबो दूं। तुम्हें किनारे पहुंचाने का प्रबन्ध कर दूं?" यह आकाशवाणी सबने सुनी। सन्त ने भी। किन्तु अब भी सन्त ने अपनी प्रार्थना जारी रखी। सहयात्रियों की दशा तो बहुत ही बिगड़ गई। लगे क्षमा याचना करने। भूल स्वीकार कर पछताने लगे।

अपनी प्रार्थना पूरी कर सन्त ने कहा—"मेरे प्रभु! यह शैतानों जैसी भाषा कैसे? नाव को उलटने की बात कहना कहां उचित है। यदि उल्ट-फेर करने का मन बना ही लिया है तो नाव मत उल्टाएं। बल्कि मेरे सह-यात्रियों की मति को उल्ट दें। उल्टाकर ही इन्हें सीधा कर दें। इनके मन में प्रभु प्रेम जगा दें। हे सच्चे परमेश्वर मेरी जरूर सुनें।"

एक बार फिर आकाशवाणी हुई—"सन्त! मैं बहुत प्रसन्न हूं। मेरी पहली वाणी देव-वाणी नहीं थी। शैतान वाणी ही थी। विनाश की बात कह दी। अब तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है। मैं इन्हें सद्बुद्धि प्रदान कर रहा हूं। नौका को सुरक्षित किनारे लगाने का प्रबन्ध कर दिया है मैंने।"

और...वे सब दूसरे किनारे जा लगे। सुरक्षित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शिष्य चैत्र को गुरु पतंजलि का राग-रंग में भाग लेना खूब अखरा

"महर्षि पतंजलि।" सम्राट पुष्यमित्र ने हाथ जोड़कर पुकारा।

"कहो। मैं यहीं हूं।...तुम्हें बधाई हो। प्रात: के समय अश्वमेध की पूर्णाहुति का काम ठीक सम्पन्न हो गया।"

"गुरुदेव! बधाई के तो आप पात्र हैं। यज्ञ के ब्रह्मा का दायित्व आप ही ने निभाया। सायं के समय नृत्योत्सव में आना मत भूलें।

"चिन्ता रहित रहो। मैं अवश्य आऊंगा।" ...और वह पहुंचे भी।

उस रात को अतिथियों के सत्कार में आयोजित नृत्य-गीत व राग-रंग ठीक समय पर आरम्भ हो गया। महर्षि के एक शिष्य चैत्र को गुरु का इसमें शामिल होना अच्छा नहीं लगा। वह कुछ कह तो नहीं पाया, मगर उसके हृदय में यह बात शूल की तरह चुभती रही।...गुरु ने क्यों भाग लिया उसमें?

कुछ दिनों बाद महर्षि पतंजलि चित्तवृत्ति-निरोध के साधन समझा रहे थे। शिष्य चैत्र को अवसर मिल गया। पूछ लिया–"गुरुदेव! राग-रंग, नृत्य, गीत भला चित्तवृत्ति-निरोध में कैसे सहायक हो सकते हैं बताएं?" महर्षि को प्रश्न के पीछे छिपी मंशा स्पष्ट नजर आ रही थी। उन्होंने कह ही दिया–"तुम्हारा अभिप्राय है कि मुझे राजा के उस नृत्य वाले कार्यक्रम में शामिल नहीं होना चाहिए था।...मैं समझाता हूं। ध्यान से सुनो। संयम के अर्थ तुम समझे ही नहीं।...वत्स! आत्मा का स्वरूप है–"रस"। जो व्यक्ति रस को परिशुद्ध और अविकृत रख सकता है, वह व्यक्ति संयमी है।"

बेटा! विकृति की आशंका से रस-विमुख होना बहुत बड़ी मूर्खता है। पशु खेत को चर जाएंगे, इस भय व आशंका के कारण खेत खाली रखना, खेती न करना भी मूर्खता है। कहीं भिखारी रोटी मांगने न आ जाएं, इसलिए रोटी न बनाना भी मूर्खता है। यही आत्मघात है। इसे संयम नहीं कह सकते, यह तो पलायन करना कहलाता है।...वत्स! मैं रात्रि के नृत्य, गीत-संगीत कार्यक्रम में भाग लकर भी उस सबसे अछूता बना रहा। इसे ही संयम कहेंगे। नृत्योत्सव मेरे चित्तवृत्ति-निरोध के साधनों में पलभर के लिए भी बाधा नहीं बना, इसे याद रखना।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पिता से मिली उपेक्षा

दो सौतनें एक ही आश्रम में बहनों की तरह बहुत प्यार से रहा करतीं। सौतन होने का आभास भी नहीं दिया उन्होंने किसी को। एक थी श्लेषा जो ब्राह्मण पुत्री थी। दूसरी थी इतरा–जो शूद्र कन्या थी। इन दोनों के पति थे महर्षि शाल्विन, जो दोनों पत्नियों को पूरा प्यार देते। सम्मानजनक व्यवहार किया करते।

इसे संयोग ही कहिए कि इन दोनों पत्नियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया–लगभग एक ही समय पर। इन दोनों सौतेले भाइयों में भी बहुत प्रेम था। अपनी-अपनी माताओं से स्नेह व ज्ञान पाते। खेलकूद में अच्छा समय बिताते।

एक दिन दोनों भाई महर्षि की यज्ञशाला पर पहुंचे। पिता ने श्लेषा (ब्राह्मणी) के पुत्र को तो आदरपूर्वक गुरुमन्त्र दिया, जबकि इतरा (शूद्र कन्या) के पुत्र से अछूतों-सा व्यवहार करने लगे। उपेक्षा तो की ही, प्रताड़ना भी कर डाली।

वह रोता हुआ मां की गोदी में आ लेटा। मां ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा–"बेटा! अधीर नहीं होते। अपनी आत्मा को गुरु मान, इस धरती की गोद में रहकर ज्ञान अर्जन करो, तुम्हारा कल्याण होगा।"

मां इतरा से आशीर्वाद पाकर बालक ने कठिन परिश्रम किया। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-मनन शुरू कर दिया। जवान होते-होते उसने ऐतरेय ब्राह्मण लिख डाला जो कि वैदिक मन्त्रों की व्याख्या के लिए अब भी अमूल्य कृति मानी जाती है। दूसरा भाई ऋषि पिता का शिष्य, ब्राह्मण माता श्लेषा का पुत्र, देखता ही रह गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत माधवाचार्य की प्रार्थना सुन गंगा ने पूरी टोली को मार्ग देकर पार लगाया

विशाल गंगा को पार करना था। जब सभी शिष्य ठिठककर खड़े हो गए तो गुरु सन्त माधवाचार्य ने कहा–"हम उत्तर भारत की यात्रा पर हैं। रास्ते में गंगा है। इसे तो पार करना ही होगा। तुम सब मेरे पीछे-पीछे गंगा में प्रवेश कर जाओ।" न चाहते हुए भी शिष्यों ने गुरु की बात मानी और उनका अनुकरण करते हुए गंगा नदी में प्रवेश कर गए। सन्त ने मन ही मन प्रार्थना की। मां गंगा का वेग कम हो गया। बहाव शान्त हो गया। उन्हें नदी पार करने में जरा भी कठिनाई नहीं आई।

जैसे ही वे गंगा के उस पार पहुंचे मुगल बादशाह जलालुद्दीन खिलजी के सिपाहियों ने उन्हें घेर लिया। उनको जासूस समझकर उन पर वार करने लगे। तब सन्त ने कहा–"हम तो साधु-सन्त हैं, हम तुम्हारे राज्य को कोई क्षति नहीं पहुंचा सकते। हमने तो तुम्हारे बादशाह से मिलना है। उनके दर्शन करने से प्रसन्नता मिलेगी हमें।" यह सुनकर सिपाहियों ने उन्हें जाने दिया।

मगर जब बादशाह ने उन्हें देखा तो क्रोध में आकर बोले–"तुम काफिर! तुम बैरागी...क्यों आए मेरी सीमा के अन्दर। तुम्हारे इस हौसले की तुम्हें जरूर सजा मिलेगी।"

इतना सुनकर सन्त माधवाचार्य ने बहुत ही मीठी वाणी में कहा–"हम तो आपके राज्य से उत्तर की ओर जाना चाहते हैं। हमें इतनी बड़ी नदी ने रास्ता दे दिया, आपसे भी रास्ता मांग रहे हैं। हमने आपके सैनिकों से कह दिया था कि हम पहले बादशाह के दर्शन करेंगे, फिर आगे जाएंगे।...खुदा कहो, अल्लाह कहो, कृष्ण कहो या राम...सब एक ही हैं। आप और हम उसी की सन्तानें हैं।...आपके दर्शन कर हमें बड़ी खुशी हुई।"

सन्त के मुंह से ऐसे मीठे वचन सुनकर बादशाह जलालुद्दीन खिलजी बहुत प्रसन्न हुए। गुस्सा तो भाग ही चुका था। वह सन्त तथा शिष्यों को महल में ले गए और उनका सम्मान किया। उन्हें निर्भय होकर अपने लक्ष्य की ओर जाने की आज्ञा दे दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उर्वशी के शाप से नपुंसकत्व झेलना पड़ा वीर अर्जुन को

"कौन है जो नर का अवतार तथा नारायण का अंगी-संगी हो? जो कि युधिष्ठिर की नज़रों में नौवां वसु, दसवां ग्रह, बारहवां रुद्र तथा तेरहवां आदित्य रहा हो?...इसे एक शब्द में समेटो?"

"कुछ और?"

"हां, इतना ही नहीं, वह कम से कम दस नामों से जाना जाने वाला, चाक्षुणी और प्रतिश्रुति गुणों का ज्ञाता हो।"

"मैं समझ रहा हूं पर थोड़ा और विस्तार से बताएं।"

"जिसके पास दिव्य अस्त्र-शस्त्र मौजूद हैं तथा इनके प्रयोग का अधिकारी माना जाता है। उसके रक्त में स्वयं इन्द्र का अंश है इसलिए वह अपनी ताकत पर अभिमान करता है। वह भोग तथा योग दोनों को अपनी विशेषता मानता है...कौन है वह?" प्रश्नकर्ता ने कहा।

"अब मैं समझ गया। आप अर्जुन की बात कर रहे हैं...अरे, यह भी कहो न कि उसकी महत्त्वाकांक्षा के फलस्वरूप एकलव्य को अपना अंगूठा कटवाना पड़ा। उसी के कारण तो कर्ण को लगातार अपमानित जीवन जीना पड़ा। जिसे स्वयंवर में जीतकर लाई पत्नी द्रौपदी को अन्य चार भाइयों में बांटना पड़ा। जिसे उर्वशी का शाप तथा नपुंसकत्व भी झेलना पड़ा। यह अर्जुन ही तो था जो भीलों से गोपियों को बचा न पाया...। क्या मेरा उत्तर ठीक है?"

"बिल्कुल ठीक। पांच स्त्रियों में सदा बंटा रहने वाला अर्जुन...जिसकी विशेषताएं हम दोनों ने गिनाईं।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

धन्ना के लगाए भोग को भगवान खा जाते, पीछे छोड़ते जरा-सा प्रसाद

धन्ना जाट (जट) एक भोलाभाला मगर पहुंचा हुआ भक्त था। उसने एक पत्थर से ही मुरली मनोहर कृष्ण को पा लिया था। उसके पड़ोस में था एक त्रिलोचन ब्राह्मण। वह अपने को ईश्वर भक्त होने का दावा करता। बहुत घमण्ड हो गया था उसे अपनी भक्ति का। उसका घमण्ड चूर करने का निर्णय कर धन्ना जट उसके पास गया। आवाज दी-"पंडितजी।"

"हां, क्या बात है। मैं पूजा कर रहा हूं।"

"कोई बात नहीं। मैं प्रतीक्षा करता हूं।" वह आंगन में बैठ गया।

बहुत देर बाद पंडितजी आए। तब धन्ना ने कहा-"आप बहुत देर पूजा करते हैं। मेरा भी मन करता है आप मुझे एक ठाकुरजी की मूर्ति दे दें तो बड़ी कृपा होगी।"

'ठाकुर की मूर्ति कोई मामूली चीज नहीं। भारी कीमत चुकानी पड़ती है।'

"क्या दूं कीमत?" धन्ना ने पूछा।

"एक दुधारू गाय।" ब्राह्मण ने कहा। इतना सुनते ही धन्ना गया और अपनी सबसे अच्छी गाय खोलकर ले आया। इसे देखकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। किन्तु ठाकुर की जगह एक दो सेर का बाट पकड़ा दिया। "यही ठाकुर हैं ले जाओ।"

धन्ना चाहे सब जानता था, किन्तु उसने उस बाट को ही लिया और घर चला गया। उसे पूजा-स्थान पर सजाकर धूप-बत्ती, पुष्प, मिष्ठान्न अर्पित कर प्रार्थना की।

कुछ दिन बीते। धन्ना त्रिलोचन ब्राह्मण के घर गया। वह आज भी पूजा में मग्न थे। कुछ प्रतीक्षा कर सीधे उनके पूजा वाले कमरे में जा पहुंचे। उस समय पंडितजी भगवान को लगाए भोग को प्रेमपूर्वक खा रहे थे। यह देखकर धन्ना चकित हो गया। पूछा-"भगवान का भोग स्वयं खा रहे हैं?"

"क्यों, क्या बात है", ब्राह्मण ने पूछा।

"मेरे भगवान तो स्वयं भोग लगाते हैं। स्वयं खाते हैं। मुझे तो मामूली प्रसाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ही बचा हुआ प्राप्त होता है।" धन्ना ने कहा।

"झूठ। बिल्कुल झूठ!" ब्राह्मण ने कहा।

इतना सुनते ही ब्राह्मण उसके साथ गया। वही दो सेर का बाट पूजा-स्थान पर रखा था। उसी पर धूप, दीप, फूल सब पड़े थे। तब धन्ना ने बताया-"इन्होंने प्रसाद खाया है-वह देखो अब रहट चला रहे हैं। पानी निकल रहा है। तुम्हें तो ठाकुर नजर नहीं आएंगे क्योंकि तुम्हारे अन्दर विकार हैं। पाप हैं। किन्तु पानी आ रहा है, वही चला रहे हैं। देख लो वहां कोई दूसरा व्यक्ति नहीं स्वयं ठाकुर हैं। मुझे साफ दिखाई दे रहे हैं। अभी प्रसाद खाकर आए हैं।"

यह देखकर त्रिलोचन ब्राह्मण धन्ना जट के कदमों में गिर पड़ा। क्षमा मांगने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निर्धन ब्राह्मण ने भी त्याग दिया पारसमणि को, पा लिया कृष्ण-नाम

एक अति निर्धन व्यक्ति, अपने अभावों से बहुत परेशान चल रहा था। बर्दवान नगर का यह व्यक्ति गौड़ देश का नागरिक, अपनी गरीबी से परेशान होकर कठोर तप करने लगा। पूरी निष्ठा से की तपस्या रंग लाई। भगवान आशुतोष प्रसन्न हो गए। उन्होंने स्वप्न में आकर कहा–"पंडितजी! समझ लो कि तुम्हारे सारे दुःख-क्लेश कट ही गए। मेरा आदेश ध्यान पूर्वक सुनो। कल ही तुम वृन्दावन चले जाओ। वहां कोपीनधारी सनातन गोस्वामी से मिलना। उनसे पारस पत्थर पाने की प्रार्थना करना। वह तुम्हें इन्कार नहीं करेंगे। इसी से तुम्हारी निर्धनता जड़ से चली जाएगी।"

ब्राह्मण ने जब वृन्दावन के उस गोस्वामी से अपने मन की बात जाकर कही तो उनका उत्तर था–"एक बार मैं यमुना-स्नान करके लौट रहा था कि पांव के साथ एक अद्भुत प्रकार का पत्थर टकराया। मैंने इसे वहीं रेत के नीचे दबा दिया। स्वयं पुनः स्नान कर, उस ओर से निश्चिन्त हो गया। तुम इसे पाना चाहते हो तो अमुक स्थान पर से निकाल लो।" कहते-कहते गोस्वामीजी तेजी से आगे चले गए।

ब्राह्मण सीधे उसी स्थान पर पहुंचा। थोड़ी तलाश की। दो-चार जगह से रेत हटाई तो उसे पारसमणि मिल गई। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था। उसने साथ लाए लोहे के चार-पांच टुकड़ों को उस पत्थर से छू लिया। छूते ही लोहा सोने में परिवर्तित हो गया। उसकी खुशी का ठिकाना न था। पहले तो सोचा कि गोस्वामीजी को भी कुछ सोना दे दे। बाद में जितना चाहे बना लूंगा...बस गरीबी का तो नामोनिशान भी नहीं रहेगा। हाः हाः हाः मजा आ गया।

फिर सोचा, गोस्वामीजी ने तो पत्थर को छू लेने पर पुनः स्नान किया था। वह तो इसे लेंगे नहीं।...उनके पास तो अमूल्य वस्तु है।...क्यों न मैं भी उसे ही प्राप्त करने की कोशिश करूं? इतना सोचते ही उन्होंने सोने के टुकड़ों को यमुना नदी में फेंक दिया। पारस को पहले की तरह रेत के नीचे दबा दिया। फिर स्नान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

किया।

इतना करते ही ब्राह्मण का हृदय शुद्ध हो गया। अब उसे अपनी निर्धनता ही अच्छी लगने लगी। अमीर होने का विचार ही त्याग दिया। सीधे गोस्वामीजी के पास गया। उनसे प्रार्थना कर, दीक्षा ली। भगवान कृष्ण का नाम लिया। दिन-रात उसी का जाप करता रहा और...अब इतनी सिद्धियां पा लीं कि कुछ भी पाने की इच्छा न रही ब्राह्मण को।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पशुओं की करुण चीत्कार ने दूल्हे को बना दिया वैरागी

युवक नेमिकुमार का विवाह होने जा रहा था। आज उनकी बरात बहुत ही शान-ओ-शोकत से जा रही थी। वह रथ पर सजे-धजे बैठे थे। सारथी भी अपने स्थान पर आ बैठा। नेमिकुमार का विवाह एक अति सुन्दर युवती राजुल से हो रहा था। वे दोनों पहले भी मिल चुके थे। एक-दूसरे को भली प्रकार समझ गए थे। दोनों के मन में प्यार के फव्वारे फूटा करते।

विवाह बहुत ही ठाठ-बाट से किया जा रहा था। दूल्हा रथ पर बैठा अपनी होने वाली पत्नी के सुख-सुन्दर स्वप्नों में खोया हुआ था। उसके साथ आनन्दपूर्वक जीवन बिताने की सोचता जा रहा था। प्रेयसी के स्वप्नों में जैसे गुम ही हो गया। तभी कुछ पशुओं की करुण चीत्कार युवक के कानों में पड़ी। युवक ने सारथी से पूछा–"यह कैसी आवाज?...सुन रहे हो न तुम भी?"

"जी! खूब सुन रहा हूं। ये वे पशु हैं जिनका वध होने वाला है। आपके विवाह में आए मेहमानों के भोजन का प्रबन्ध होगा इनके मांस से। मलेच्छ इस मांसाहारी भोजन को शौक से खाएंगे। अपने वध की संभावना से ये पशु अवगत हैं।"

"अच्छा! तो यह होने वाला है।" इतना कहते ही दूल्हा मियां नेमिकुमार रथ से नीचे उतर गया। सीधे चीत्कार कर रहे पशुओं के पास गया। उन सबके बन्धन खोल दिये। अपने हाथों में बंधा विवाह का कंगन भी तोड़ डाला।...और अपने दूल्हा वाले वस्त्र खोल फेंके। साधारण वस्त्रों को पहन लिया। चल पड़ा जंगल की ओर। त्याग दिया घर-बार! हो गए विरागी।

जब होने वाली पत्नी राजुल को इसकी सूचना मिली तो उसने भी अपने हार शृंगार उतार दिए। श्वेत वस्त्र धारण कर गिरनार पर्वत की ओर मुंह कर, संन्यासिन बन गई।

यही युवक नेमिचन्द बाद में जैन मुनि नेमिकुमार के नाम से प्रसिद्ध हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वयं इन्द्रदेव ने परीक्षा ली सप्तर्षियों की तथा उन्हें लोभ-लालच से निर्लिप्त पाया

बात तब की है जब सारस्वत प्रदेश में अकाल पड़ा था। लोग पलायन करने लगे। साथ ही एक आश्रम था। उसमें रहते थे सप्तर्षि। उन्हें भी अन्न व जल के लिए आश्रम छोड़ना पड़ा। वे एक दिन विदर्भ राज्य में पहुंचे। वहां के सम्राट वृषाट्टर्भि को पता चला। मिलने पहुंचे। सम्राट ने उन्हें महल में ठहरने, कीमती उपहार लेने को कहा किन्तु वे नहीं माने। जब राजा का बार-बार का निवेदन भी ठुकरा दिया गया तो राजा रुष्ट हो गए। उनको परेशान करने का निर्णय कर लिया।

मन्त्री के सुझाव पर राजा ने उनके मार्ग में गूलर के फलों में सोने के छोटे टुकड़े डलवा दिए ताकि उन्हें लालच आ जाए और वे धर्मभ्रष्ट हो जाएं। किन्तु उन्होंने जब फलों में सोना देखा तो इसे फेंक दिया। इससे भी सम्राट का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने कोई और छल करने की सोच डाली।...जब सप्तर्षि कुछ आगे गए तो उन्हें एक युवा परिव्राजक मिला। अभिवादन के बाद उसने पूछ लिया–"सबसे अच्छा धर्म क्या है?"

प्रश्न सुनकर महर्षि कश्यप ने कहा–"मेरे विचार में एक नहीं, तीन सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। ये हैं–दान, दया और कर्म। जो इनको मानता है और इनका अनुसरण करना जानता है उसे सांसारिक दुख व परेशानियां नहीं घेरतीं।"

परिव्राजक का अगला प्रश्न था–"जो वेदों का अध्ययन करते हैं, क्या उन्हें भी दान, दया व कर्म की पालना करनी होती है?" महर्षि अंगिरा का उत्तर था, "जरूर! केवल वेदों का अध्ययन करना जरूरी नहीं। वेदों को अपने आचरण में उतारना पड़ता है।"

तीसरा प्रश्न पूछा परिव्राजक ने–"धर्म का सार क्या है?" इस बार उत्तर दिया महर्षि वशिष्ठ ने, वह बोले–"जो बात स्वयं को अच्छी न लगे, उसका आचरण दूसरों के लिए भी नहीं करें। परनारी को माता समान, पराये धन को मिट्टी से तुच्छ, संसार के सभी जीवों को अपने समान मानना आदि नियमों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पालना करना ही धर्म का सार है, धर्म का रास्ता है।"

इसके बाद जब सप्तर्षि पास के सरोवर को पार करने लगे तो झाड़ियों से एक राक्षसी निकली। वह उन्हें तंग करने लगी। यह भी विदर्भराज की भेजी हुई थी। परिव्राजक ने देखा। फिर हाथ में लठ लेकर आगे बढ़ा तो राक्षसी का सिर कटकर एक ओर गिर पड़ा। तब सप्तर्षियों ने जब परिव्राजक की ओर देखा तो वह 'इन्द्रदेव' थे।

इन्द्रदेव ने कहा–"आप सबकी परीक्षा सफल हुई। आपको कोई भी लोभ-लालच विचलित नहीं कर पाया। आपको क्रोध भी नहीं आया। आपके स्मरण से ही लोगों का उद्धार हुआ करेगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

श्रीहरि ने तीर्थ का नाम रखा कुब्जाम्रक, यही कहलाया हृषिकेश

ब्रह्माजी ने श्रीहरि से कहा–"मैं चाहता हूं कि आप तीनों लोकों का भ्रमण कर आवें। इससे लोगों का कल्याण होगा।"

"जो आपकी इच्छा" कहकर श्रीहरि निकल पड़े भ्रमण के लिए। हरिद्वार में रुके। स्नान किया। स्तुति की। आज के ऋषिकेश पहुंचे। तब इस पवित्र स्थान का नाम ऋषिकेश नहीं था। तब यह भक्त रैम्य की तपोभूमि थी। इस स्थान पर ऋषि रैम्य दस हजार सालों तक अपने हाथ खड़े रखकर तप करते रहे। इसके बाद बिना अन्नजल सेवन किए एक हजार सालों तक तप किया।

भगवान हरि ने अपना भेस बदल लिया। बन गए एक कुबड़ा आम्र। कुछ दिनों तक इसी तरह रहे। भक्त को समीप से देखा। भक्त ने भी कुबड़े को देखा। फिर अपने वास्तविक रूप में आ गए। ऋषि रैम्य को दर्शन दिए। वर मांगने को कहा।

ऋषि ने उनकी स्तुति की। उन्हें विनयपूर्वक कहा–"आप इसी स्थान पर विराजमान हो जाते...तो मुझे बड़ी खुशी होती।"

श्रीहरि अपने भक्त की बात टाल नहीं सकते थे। अतः मान गए। बोले–"चूंकि मैंने पहले तुम्हें कुबज आम्र के रूप में दर्शन दिया, इसीलिए इस तीर्थ का नाम कुब्जाम्रक तीर्थ होगा। इसी स्थान का नाम, मेरे नाम से हृषिकेश भी होगा।" कहकर श्रीहरि अपने भ्रमण पर आगे बढ़ गए।

आज वही हृषिकेश बदलकर ऋषिकेश पुकारा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईश्वर-भक्त लल्लेश्वरी को पागल कहकर निकाल दिया ससुराल वालों ने

एक कश्मीरी ब्राह्मण की बेटी लल्लेश्वरी का विवाह मात्र बारह वर्ष की आयु में कर दिया गया। बहुत ही लाड़ व प्यार से पली इस बालिका के बुरे दिन तभी आरम्भ हो गए जब वह ससुराल घर पहुंची। बाल्यकाल से भजन-पूजन में रुचि लेने वाली इस बालिका को उसकी सौतेली सास ने नौकरानियों की तरह रखा। अत्याचार का आलम यह था कि उसे भोजन बर्तन में न देकर गोल पत्थर पर परोसा जाता। इस नववधू ने इस व्यवहार का भी विरोध नहीं किया।

एक दिन घर में बड़ा उत्सव था। इस दिन भी बर्तन मांजने के लिए किसी नौकर या मजदूर से काम न लेकर बर्तनों का ढेर लल्लेश्वरी के सिर पर रख दिया गया। वह इसे मांजने-धोने नदी के किनारे ले गई। एक पड़ोसन ने कह दिया-"आज तो तुम्हारे घर में बकरा कट रहा है। खुशी मनाई जा रही है। मगर तू मजदूरों की तरह काम में लगी है। अभी तक गन्दे कपड़े पहन रखे हैं।"

लल्लेश्वरी ने धीरे से शान्त मन से कह दिया-"मुझे खान-पान में कोई रुचि नहीं। मांस तो मैं कभी खाती नहीं। उत्सव हो या नहीं, मेरे लिए दोनों एक समान हैं मैं तो गोल पत्थर पर मिलने वाले भोजन से ही सन्तुष्ट हूं।" यह बात ससुर तक पहुंची। ससुर ने उसकी सास को डांट दिया। ऐसा न करने को कहा। मगर सास ने अपने बेटे तथा लल्लेश्वरी के पति के कान भरकर उल्टी-सीधी बातें कह दीं। माहौल बिगड़ गया । सहानुभूति की बजाय पति ने भी बेचारी लल्लेश्वरी की पिटाई कर डाली। इसे भी उसने चुपचाप बरदाश्त कर लिया। अब लल्लेश्वरी बेसहारा-सी होने लगी तथा भगवान का सहारा पाने के लिए दिन-रात भक्ति में लीन रहने लगी।

ससुराल वालों ने उसे पागल घोषित कर घर से निकाल दिया। वह भी चुपचाप चली गई। अब तो गलियों में वह भक्ति के मधुर गीत गाने लगी। कुछ लोग प्रभावित होते गए जबकि कुछ बच्चों व लोगों ने उस पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। वह फिर भी बेपरवाह बनी ईश्वर के रंग में रंगती चली गई।

एक समय ऐसा आ गया जब लोग उसे सन्त मानने लगे तथा उसकी शिव उपासना की प्रशंसा होने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऋषि-पुत्री कावेरी बनी कावेरी नदी

पुत्र प्राप्ति की प्रबल कामना थी मन में–इसीलिए घोर तप किया कुवेर मुनि ने। कर लिया ब्रह्माजी को प्रसन्न।

भगवान ने इच्छा जानी। कर दी प्रदान विष्णु-कन्या। मुनि इसे पाकर भी बहुत प्रसन्न हुए। बेटा नहीं तो बेटी ही सही।...कुवेर मुनि ने इस कन्या का नाम कावेरी रखा। बड़े स्नेह व प्रयत्नों के साथ इसका पालन-पोषण किया।

कावेरी उदास रहती। पिता ने बहुत समझाया, पर वह स्थिर न हो पाई। चंचला-सी, अपनी ही सोच में डूबी रहती। केवल एक ही दिशा में लगी थी वह। उसी अनुसार चलती रही।

कावेरी के मन में सदा परोपकार की भावना निहित रहती। किस प्रकार वह अधिक से अधिक लोगों के काम आ सकती है, उनका उपकार कर सकती है। इसी दिशा में सोचा करती।

कन्या ने तप की सोची। घोर तप किया। ईश्वर प्रसन्न हुए। नदी-रूप धारण करने की इच्छा प्रकट की। प्रभु ने तथास्तु कह दिया। कन्या को नदी-रूप प्रदान किया। सदा बहते रहने का आशीर्वाद भी दिया। नदी का नाम भी कावेरी ही पड़ा।

यह नदी आज भी विद्यमान है। यह पश्चिमी घाट के ब्रह्मगिरि से निकलकर बंगाल की खाड़ी में समा जाती है। स्कंदपुराण में भी इस नदी का इसी प्रकार वर्णन मिलता है। परोपकार करते रहने की इच्छा पूर्ण हो गई कुवेर मुनि की बेटी कावेरी की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

साधु के मंदिर की बजाय शालिग्राम ने सदन कसाई की दुकान पसन्द की

ईश्वर केवल मनुष्य को जन्म देता है। जाति का झंझट तो मनुष्य ने स्वयं पाल रखा है। ईश्वर की नजरों में जात-पांत की ऊंच-नीच है ही नहीं। किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति ईश्वर की साधना कर, उस सच्चे पिता का प्रेम प्राप्त कर सकता है। भगवान तो प्रेम के भूखे हैं। जहां से भी प्रेम मिले, वही उनका।

सदन नाम का एक सन्त हुआ है जो कि जाति व पेशे से कसाई था। किन्तु उसे जीव-हिंसा से बड़ी घृणा थी। परिवार के पालन-पोषण के लिए सदन मांस जरूर बेचता, मगर वह किसी पशु का वध नहीं करता। दूसरे कसाइयों से मांस खरीदकर बेच दिया करता। इस प्रकार निर्वाह चलता रहा। वह बाल्यकाल से लेकर बाद तक जप, गुणगान, हरि भजन, हरि कीर्तन में पूरी रुचि लेता रहा। मांस तोलने के लिए जिस बाट का प्रयोग करता, वह शालिग्राम की मूर्ति थी, जिसका उसे ज्ञान नहीं था।

एक बार एक साधु सदन कसाई को दुकान के सामने से गुजरा। तराज़ू में पड़े शालिग्राम को देखा। उसे बहुत बुरा लगा। अपवित्र हाथों से बार-बार मूर्ति का छुआ जाना उन्हें बहुत बुरा लगा। साधु ने यह मूर्ति सदन कसाई से ले ली। इसको धोकर, गंगाजल से पुनः धोया। शुद्ध करने के बाद शालिग्राम को अपने घर में बने मंदिर में रख दिया।

दो-चार दिन बीते। एक रात शालिग्राम ने साधु को स्वप्न में आकर कहा-"तूने मुझे यहां बंधक बनाकर रख दिया। मैं सदन कसाई की छोटी-सी दुकान में खुश था। जब-जब वह मेरे को छूता, मुझे अच्छा लगता। वह अपना काम करते समय भजन-कीर्तन करता रहता। इससे मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती। मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठता। अच्छा होगा यदि तुम अपनी गलती में सुधार कर, मुझे सदन कसाई के पास पहुंचा देते।...मैं तुम्हारे मंदिर से उसकी मांस की दुकान में रहना अधिक पसन्द करूंगा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रातः होते ही साधु ने शालिग्राम को माथा टेका। इसे उठाया और सदन कसाई के पास पहुंचा दिया। साधु ने उसे बताया कि यह न पत्थर है, न बाट है, बल्कि यह भगवान शालिग्राम हैं। इतना सुनकर सदन को बहुत दुख हुआ। उसने मांस बेचने का काम भी त्याग दिया। अपने शालिग्राम को गोद में उठाया और वह घर-गृहस्थी त्यागकर पुरी के लिए चल पड़ा। भगवन्नाम व हरिकीर्तन में इतनी रुचि लेने लगा कि कुछ ही दिनों में सदन कसाई एक ख्याति प्राप्त संत सदन बनकर लोगों को ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गार्ग्य के पांव से सांप लिपटा रहा और वह शांत पड़ा रहा

शिष्यों ने अपने गुरु महर्षि बोधायन से विनयपूर्वक कहा–"भ्रमण को मन करता है। हम शिष्यों के साथ आप भी चलें। वन भ्रमण कर आवेंगे।" इस अनुरोध को गुरु मान गए। वे अपने आश्रम से काफी दूर जाकर, एक रमणीक क्षेत्र में, नदी के तट पर विश्राम करने लगे। जल विहार, जल क्रीड़ा करने के बाद सबने भोजन किया और कुछ देर के लिए लेट गए। किसी को नींद आ गई। कोई जाग्रत अवस्था में लेटा रहा।

रात बीती। प्रात: के समय गुरु ने एक शिष्य के पांव से लिपटे सांप को देखा। शिष्य गार्ग्य जाग रहे थे। किन्तु पांव से लिपटा सांप सो रहा था। गुरुजी को शिष्य ने धीरे से कहा–"आप पीछे हट जाएं। इसे सोने दें। जब इस महासर्प की नींद पूरी हो जाएगी यह स्वत: चला जाएगा।...आप अपनी ओर से इसकी निद्रा भंग न करें।" कोई एक घन्टा बीत गया। सबके सब गुरु तथा शिष्य अपना-अपना सांस थामे देखते रहे। वे सब अधिक डरे हुए थे, जबकि गार्ग्य बहुत शान्त पड़ा रहा। वह उनकी भांति भयभीत नहीं हुआ। कोई एक घन्टे बाद सांप जागा। पांव से हटकर धीरे-धीरे अपनी बिल में जा घुसा। तब सबके सांस में सांस आई।

इसे देखकर महर्षि बोधायन का मन बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने अपने शिष्य गार्ग्य को अपने गले से लगाकर आशीर्वाद दिया। कहा–"बेटा! तुम्हारी शील सम्पदा में कभी कमी न आए।" इतना सुनकर एक शिष्य मैत्रायण ने कह दिया–"गार्ग्य ने शील स्वभाव का नहीं, बल्कि सराहनीय साहस का परिचय दिया है।" तब गुरु ने पानी और बर्फ का उदाहरण देते हुए कहा–"जल का ही घनीभूत रूप हिम है। ठीक ऐसे ही शील का घनीभूत रूप साहस है।...गार्ग्य द्वारा दिखाया शील स्वभाव अनुकरणीय है। सराहनीय है, प्रशंसनीय है। मेरी इस शिष्य को शुभकामनाएं बनी रहेंगी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

तेलंग स्वामी को चूने का पानी पिलाने वाला ही हो गया बीमार

जो व्यक्ति दूसरों के लिए खाई खोदता है उसके लिए कुआं खुदा रहता है।...जो दूसरों की आत्मा को तड़पाता है उसकी अपनी आत्मा कभी शांत नहीं रह सकती। ऐसी ही एक घटना है यह।

एक व्यक्ति ने तेलंग स्वामी को दूध पिलाने का नाटक रचा। वह एक बर्तन में चूना घोलकर ले आया। स्वामीजी से बोला–"दूध पी लीजिए।"

स्वामीजी इसे गटागट पी गए। पिलाने वाला सोच रहा था कि उसने स्वामी को मूर्ख तो बनाया ही है, अभी यह चूना जब प्रभाव करेगा तो स्वामी तेलंग की दुर्दशा हो जाएगी।...ऐसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि तंग करने वाले को तंग होना पड़ा। चूना पिलाने वाले का जी घबराने लगा। पेट तथा छाती में दर्द होने लगा। धीरे-धीरे यह पीड़ा असहनीय हो गई। इधर तेलंग स्वामी बड़े ही आराम से बैठे अपना काम करते रहे। उन्हें तकलीफ हुई ही नहीं।

वह व्यक्ति धीरे-धीरे स्वामी की शरण में जा पहुंचा। अपने किए पर पश्चाताप करने लगा तथा कष्ट से छुटकारा दिलाने की प्रार्थना करने लगा। स्वामीजी ने एक कागज पर लिखा–"तेरी मेरी आत्मा एक ही है, यदि तू मेरी आत्मा को तड़पाता है तो तेरी आत्मा अवश्य तड़पेगी। चूने का पानी मैंने पिया। परिणाम तुझे भुगतना पड़ा। इसका मतलब भी यही है कि हम सबमें एक ही आत्मा है। बेटा! भविष्य में किसी को भी कष्ट पहुंचाने की कोशिश मत करना। लो, मैं तुम्हें इस कष्ट से छुटकारा दिला रहा हूं।" ऐसा लिखने के बाद तेलंग स्वामी ने इस दुष्ट व्यक्ति के सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया। वह देखते ही देखते सामान्य हो गया। पूरी तरह पीड़ा रहित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा जनक की परीक्षा लेने के लिए धर्म ने ब्राह्मण रूप धारा

महाराज जनक को किसी ने शिकायत की–"आपके राज्य में अमुक ब्राह्मण दोषी पाया गया है। आपने उसे कोई दण्ड नहीं दिया। क्या बात?"

आदेश हुआ। उस ब्राह्मण को महाराज के सम्मुख ला खड़ा किया गया। पूरी बात जानकर जनक ने कहा–"तुम्हें इसी समय मेरा राज्य छोड़कर कहीं अन्यत्र जाना होगा। यही दण्ड निर्धारित करता हूं तुम्हारे लिए।"

"आपके आदेश का पालन होगा महाराज! इतना तो बता दें कि आपके राज्य की सीमा कहां तक है?"

यह प्रश्न सुनते ही राजा सोचने लगे...मेरा राज्य...पूरी पृथ्वी पर तो मेरा आधिपत्य है नहीं...मिथिला नगरी ही वास्तव में मेरे नियन्त्रण में है...। राजा को आत्मज्ञान होने लगा...नहीं, नहीं, मिथिला नगरी तो बहुत बड़ी है...प्रजा तक ही तो मेरा अधिकार है...पूरी प्रजा ही क्यों...मेरा अधिकार, मेरा साम्राज्य तो मेरे अपने शरीर तक ही सीमित है।...अरे नहीं...मेरा अपना शरीर भी मेरे वश में नहीं है। तुरन्त बोले–"ब्राह्मण देवता, आप जहां चाहें वहीं रह सकते हैं।...सच तो यह है कि मेरा अधिकार किसी भी वस्तु पर नहीं है–मेरे अपने शरीर पर भी नहीं।"

"क्या कह रहे हैं आप?" ब्राह्मण चकित होने लगा।

"इसमें चकित होने की कोई बात नहीं ब्राह्मण। अभी-अभी आत्मज्ञान हुआ है कि संसार की हर वस्तु जब नश्वर है तो मेरा अधिकार इन पर रहा नहीं। शास्त्र भी कहते हैं कि इस विश्व में न तो कोई अधिकारी सिद्ध होता है, न ही कोई वस्तु अधिकार योग्य है।...राज्य की बागडोर सम्भाले हुए मैं अपने लिए कुछ नहीं कर रहा...जो कुछ कर रहा हूं वह देवता, पितर, भूत तथा अतिथि सेवा हेतु ही है। अत: मेरा अधिकार न पृथ्वी पर है, न ही अग्नि पर। मेरा अधिकार जल, वायु, प्रकाश पर भी नहीं। और तो और मेरा अधिकार तो मेरे मन पर भी नहीं।" इतना सुनते ही ब्राह्मण अपने असली रूप 'धर्म' में आ गया। बोले–"आपसे महान, धार्मिक, प्रजापालक और कोई राजा नहीं है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देवराज इन्द्र ने चाल चली और महर्षि को बना डाला शिकारी

एक महर्षि ने घोर तप करना शुरू कर दिया। बिना विघ्न, बिना अड़चन तप चलता रहा। देवराज इन्द्र को सूचना मिली। मन में भय जागा। शिकारी का रूप धारण कर लिया। आ पहुंचे महर्षि के आश्रम में। बोले–"मुझे किसी जरूरी काम से कहीं जाना है। मैं अपना धनुष-बाण आपके पास रखना चाहता हूं। अमानत हैं। कुछ समय बाद लौटकर संभाल लूंगा। कृपया इसे रख लें।"

महर्षि नहीं जानते थे कि यह इन्द्रदेव हैं। इन्हें अपनी कुर्सी का खतरा है। छल करके शिकारी रूप धारण किया है। उन्होंने इस शिकरी के धनुष-बाण को रखने से साफ इनकार कर दिया। बार-बार की प्रार्थना पर महर्षि ने कहा–"ठीक है। नहीं मानते तो इसे कुटिया के उस कोने में रख दें।...किन्तु मैं बहुत बार तप में लीन हो जाता हूं। मैं इसकी रखवाली नहीं कर सकता।...."

"चिन्ता मत करें महात्मा। इसे कोई नहीं ले जाने वाला। बस आते-जाते इस पर एक नजर डाल दिया करना।" कहते ही शिकरी बने इन्द्रदेव अलोप हो गए।

महर्षि तप किया करते। मगर उनकी अकसर नजर कोने में पड़े तीर-कमान पर जरूर पड़ जाती। राजा थे वह कभी। राज-पाठ छोड़कर संन्यासी बने थे। अपने जीवन में खूब शिकार भी खेले। तीर-कमान चलाया करते। अपने सामने रखे धनुष-बाण को देखकर उनके मन में भी इसे चलाने की इच्छा जागने लगी धीरे-धीरे सही। पुराने दिनों की याद ताजा होती गई इसी विचार से। महर्षि ने उठा लिया तीर-कमान। लगे इसे चलाने।

हां, तप से समय बचाकर जंगल में निकल जाते। यह धनुष-बाण महर्षि का ध्यान खूब बांटने लगे। तप में कमी आती गई। यही तो चाहते थे देवराज इन्द्र। उनका खतरा टल गया। वह कभी नहीं लौटे अपनी अमानत लेने। धनुष-बाण वापिस पाने।

देवराज इन्द्र की तरकीब सफल हुई। अब उन्हें इस महर्षि से कोई खतरा न था। उनका सिंहासन सुरक्षित हो गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिना बताए मृत बच्चे के लिए दीर्घ आयु मांगी और वह जीवित हो गया

'डहरकी' गांव में एक निर्धन, विधवा स्त्री रहती थी। सायं के समय उसके एकलौते बेटे का निधन हो गया। रो-रोकर उसने आसमान सिर पर उठा लिया। उसको बहुत लोगों ने समझाया तथा इसे ईश्वर की इच्छा मानकर स्वीकार करने को कहा। किन्तु उसका रोना, सिर तथा छाती पीटना जारी रहा। तब उसी गांव के एक वृद्ध व्यक्ति ने उसे समझाया-"बीबी! रोने से कुछ नहीं बनेगा। हां, एक तरकीब बताता हूं। हो सकता है यह तुम्हारे काम आ जाए...संत कंवरराम (सिन्ध के रहने वाले) आज गांव में आए हुए हैं। आज रात्रि मंदिर में वह कीर्तन करेंगे। इस भजन-कीर्तन के समय तू अपने बेटे को चादर में लपेटकर ले जाना। उनसे कहना कि वह इसे दीर्घ आयु होने का आशीर्वाद दें। हां, उनसे मृत होने की बात मत कहना।"

उस स्त्री ने वैसा ही किया। संत कंवरराम ने भी हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दे दिया। देखते ही देखते मृत शरीर में जान आने लगी। वह हिलने लगा। इस चमत्कार ने केवल उस विधवा को ही नहीं, वहां उपस्थित उन सब लोगों को चकित कर दिया जो वास्तविकता जानते थे। भावविभोर होकर वह स्त्री खुशी से झूमने लगी। झूमते हुए उसने सारी बात संत कंवरराम को भी बता दी।

सन्त ने कहा-"देवी! तुमने गलत किया। ऐसा नहीं करना चाहिए था। ईश्वर की इच्छा को चुपचाप मान लेने में ही भलाई है। यह तो प्रभु की कृपा है कि उसने मेरी लाज रख ली वरना मृत को जीवित कर पाने की तो मैं सोच ही नहीं सकता।...देवी! ऐसी भूल फिर मत करना।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राजा जनक को शिक्षा देने वाले झुक गये उनके सामने

घने वनों में तीन योगी तप किया करते। उन्होंने राजा जनक से मिलने का निर्णय किया। पहुंच गए महाराज सीरध्वज जनक की राजधानी में। जब वे वहां पहुंचे तो महाराज रंगमहल में नृत्य देख रहे थे। राजा को जब पता चला तो उन्होंने उन तीनों योगियों के लिए ठहरने के उचित प्रबन्ध करने का आदेश दिया।

किन्तु इन संन्यासियों ने कहा–"हमारा महलों में क्या काम? हम तो वीतरागी हैं।...यदि आपको हमारे प्रवचन सुनने हैं तो वन में चले आना।" राजा ने सहमति जताई।...राजा प्रतिदिन रथ पर बैठकर वन को जाते। उनके प्रवचन सुना करते। महीनों बीत गए इस धर्म-कथा में।

इसी क्रम में एक दिन उनके प्रवचन चल रहे थे। पदार्थ और नश्वरता पर उपदेश दिए जा रहे थे। तभी उनका एक शिष्य आया और बोला–"महात्मन्! आपकी कुटिया में एक अजीब-सा जानवर घुस गया है। वह आप महात्माओं की लंगोटियां लिए जा रहा है।"

"रोको! हम अभी आए।" तीनों महात्मा उठे और कुटिया में जानवर के पीछे भागे। जानवर अब तक भाग चुका था। लंगोटियां भी वहीं पड़ी थीं। उन्होंने इन्हें उठाकर यथास्थान रखा और लौटकर प्रवचन सुनाने लगे। तभी...एक सैनिक टुकड़ी वहां आ पहुंची और राजा को रंगमहल में आग लगने की सूचना दे दी। राजा ने सुना। फिर बोले–"मुझे अपने धर्म-उपदेश सुनने दो। मन्त्रियों को कहो कि वे ही जरूरी प्रबन्ध कर लें। मैं नहीं आ सकता।"

इतना सुनते ही तीनों योगियों के सिर झुक गए। उन्होंने उठकर राजा को नमस्कार किया। बोले–"हम आपको पदार्थों से दूर रहने, वीतराग रखने, तथा देह की नश्वरता को पहचानने के उपदेश दे रहे हैं।...आप तो सचमुच वीतरागी हैं। जबकि हम अपनी लंगोटियों के मोह में फंसे हैं।...हम आपके सम्मुख कुछ भी नहीं। हम चाहते थे आपको शिक्षा देना, जबकि हमें चाहिए आपसे शिक्षा लेनी। आपसे बड़ा ज्ञानी और भला कौन होगा राजन्।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गार्गी जीवन भर निर्वस्त्र रहीं तथा इसी प्रकार भ्रमण भी करतीं

एक स्त्री-महात्मा हुई हैं पुरातन समय में। अपार ज्ञान...दूर-दूर तक ख्याति ...नाम था गार्गी। जब से वह संभली, सदा ही निर्वस्त्र रहने लगीं। आम आदमी के लिए यह बड़े आश्चर्य की बात थी। समाज में इसकी चर्चा अवश्य हुआ करती।...वह तो अपने शरीर पर एकाध ढीला वस्त्र या चादर आदि भी नहीं लिया करतीं। आज के दिगम्बर साधुओं की तरह।...लोग क्या सोचते हैं, उन्हें इसकी जरा भी चिन्ता न थी।

किसी भक्त ने पास आकर कहा-"माता! लोग आपका बहुत सम्मान करते हैं। आपके ज्ञान की प्रशंसा करते नहीं थकते। मगर आपका यों वस्त्र-विहीन रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे तरह-तरह की बातें बनाते हैं।...इसीलिए मां, मैं परामर्श लेकर आया...इससे आपकी बदनामी नहीं होगी माता...।"

गार्गी ऋषि सुनती रहीं। उसे देखती भी रहीं। जब उसने बोलना बन्द किया तो वह बोलीं-"बेटा! जो अज्ञानी हैं, उन्हें ही मेरी चमड़ी दिखाई देती है। उन्हें ही मेरा नग्न शरीर नजर आता है।...ऐसे लोग मेरी निगाह में केवल पशु हैं।...किन्तु जो विद्वान हैं, जो समझदार हैं, जो ईश्वर से प्रीत बनाकर चलते हैं, उन्हें मेरी भीतरी रूहानी मंजिलें दिखाई देती हैं।...उन्हें मेरा शरीर नजर नहीं आता, बिल्कुल भी नहीं। अत: आप भी जाओ...मन की आंखें खोलो...ईश्वर को ढूंढ़ो।...अन्त:करण में झांको...पशु मत बनो...अपने काम में ध्यान दो। मेरी चिन्ता छोड़ दो। लोग मेरे विषय में क्या कहते हैं यह भी मत सोचो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिना पूछे एक फूल भी नहीं तोड़ना चाहते थे महर्षि चरक

उस समय के राजा ने राजाज्ञा दे रखी थी जिसके अनुसार महर्षि चरक शोध कार्य के लिए राज्य में कहीं से भी कोई वनस्पति तोड़ सकते थे। यह बात सब जानते थे। मगर महर्षि चरक ने इस राजाज्ञा का कभी अनुचित लाभ नहीं उठाया।

एक बार वह अपने कुछ शिष्यों के साथ औषधियों की खोज में वनों को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक ऐसा फूल नजर आया, जो उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। वह इसे देखकर प्रसन्न हो गए। इसे तोड़ने के लिए खेत में गए। खेत की मेड़ पर लगे फूल को तोड़ने को हाथ बढ़ाया ही था कि ठिठककर रुक गए। सीधे खड़े हो गए। फूल को तोड़ने का इरादा छोड़ दिया।

एक शिष्य ने पूछ लिया–"गुरुजी! रुके क्यों?"

"हमने इस खेत के मालिक से पूछा नहीं। बिना उसकी स्वीकृति के फूल तोड़ना उचित नहीं।"

"किन्तु आपके पास तो राजाज्ञा है।"

"होती रहे। खेत के मालिक की भी स्वीकृति जरूरी है। यदि हम उससे नहीं पूछते तो समझ लो कि हम नैतिक अपराध कर रहे हैं।...यह अपराध मैं नहीं होने दूंगा।" इतना कहकर उन्होंने उस किसान के घर का पता पूछा। डेढ़-दो मील दूर उसके पास पहुंचे। उसके खेत से एक फूल तोड़ने की आज्ञा प्राप्त की तब वापस आए। फूल तोड़ा। तब आगे बढ़े वन की ओर। उनके इस उत्तम आचरण को देखकर उनके शिष्यों ने भी इसे अपने जीवन में अपना लेने का संकल्प किया। निभाया भी जीवन भर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईंट (या वीट) पर खड़े रहने के कारण भगवान कहलाए 'विट्ठल'

भीमा नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर सन्त पुण्डलीक अपने माता-पिता के साथ रहा करते। हर समय उनकी सेवा में व्यस्त रहते। माता-पिता के पांव दबाते। जब तक उन्हें नींद नहीं आती, वह पांव दबाते रहते। उनके खान-पान, स्नान, रहन-सहन की अच्छी व्यवस्था करते।

भगवान कृष्ण सन्त पुण्डलीक की मातृ-पितृ भक्ति से बेहद प्रसन्न थे। उन्होंने रुक्मिणी के साथ पुण्डलीक को दर्शन देने का निर्णय किया। आ पहुंचे। मगर इस समय पुण्डलीक अपने पिता के पांव दबाने में इतने लीन थे कि ध्यान ही नहीं दिया प्रभु के आने का। स्वयं भगवान ने उनकी तन्द्रा तोड़ी। बोले-"हम आए हैं, तुम्हें मिलने।" जब पुण्डलीक ने उन्हें वहां देखा तो पास में पड़ी दो ईंटें उठाकर उनकी ओर धीरे से फेंक दीं। बोले-"आप इन पर खड़े हों। जैसे ही मेरे माता-पिता सो जाते हैं, मैं आपके पास आ जाऊंगा।" और वह अपने माता-पिता के पांव दबाने में लग गए। सारा ध्यान उन्हीं के चरणों में लगा दिया।

पुण्डलीक के शुद्ध भाव तथा सेवा को देखकर प्रभु प्रसन्न हो गए। ईंटों पर खड़े हो, प्रतीक्षा करने लगे। जैसे ही पुण्डलीक उठने लगा, माता-पिता ने आंखें खोलीं। वह फिर बैठ गया। संकेत से भगवान से अभी प्रतीक्षा करने के लिए कहा। वह भी अपने भक्त का आदेश मानकर चुपचाप खड़े रहे।

सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी ने सोचा-जब सन्त ने हमारे यहां खड़े होने की व्यवस्था की है, तब क्यों न हम उसका आदेश मानें। और वे दोनों मुस्कराते हुए वहीं खड़े रहे। वहां से कभी न हटने का भी निश्चय कर लिया। उनकी कृपा से सन्त पुण्डलीक अपने माता-पिता के साथ उसी समय भगवद्धाम पहुंच गए। किन्तु...विग्रह के रूप में ईंट पर खड़े रहे। मराठी भाषा में ईंट को वीट कहते हैं। तभी से भगवान का नाम विट्ठल पड़ गया। जिस स्थान पर वह अपने इस भक्त को मिलने आए उसे पुण्डलीकपुर नाम मिला। आजकल पुण्डलीकपुर को पंढरपुर के नाम से जाना जाता है। संत पुण्डलीक के अनुयाइयों को वारकरी पन्थ से पहचाना जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भूख से मरते हज़ारों लोगों को बचा लिया एक दरिद्र ने

कुटिया में पहुंचने वाले थे एक सेठ तथा दूसरा दरिद्र व्यक्ति। ऋषि मुनिरात ने दोनों को एक जैसा आसन देकर बैठने को कहा। फिर बोले–"वाह! आज गरीब और अमीर, रंक और राजा एक साथ आए हैं। क्या प्रयोजन है आपका?"

"जी! मैं कहता हूं कि भगवान के अधिक करीब मैं ही हूं। तभी तो उसने मुझे बेशुमार धन-दौलत, सारे वैभव दिए हैं।" सेठ ने अपनी बात कही।

अब बारी थी निर्धन व्यक्ति की। वह बोला–"मैं सन्तुष्ट हूं। मुझे ईश्वर से कोई शिकायत नहीं। थोड़े को भी बहुत समझता हूं। क्या मेरे सन्तुष्ट रहने का यह मतलब नहीं कि मैं ही ईश्वर के अति निकट हूं?"

दोनों की समस्या व विश्वास बड़े ध्यान से सुन ऋषि मुनिरात ने हवा में हाथ घुमाया। देवशक्ति के कारण, उनके सामने दो घड़े आ गए। दोनों सोने की मोहरों से भरे थे–"एक-एक घड़ा उठा लो। जाकर इसका सदुपयोग करो। ठीक एक साल बाद, इसी दिन मेरे पास आना। तब ही आपका फैसला हो सकेगा।"

दोनों एक वर्ष बाद इकट्ठे पहुंचे। सेठ ने कहा–"मैंने अपनी बुद्धि-कौशल से मोहरों को व्यापार में लगाया। आज मेरे पास कई गुना धन हो गया है। इतना अधिक सदुपयोग किया मैंने।" फिर निर्धन ब्राह्मण ने कहा–"मैं निर्धन था। निर्धन हूं। इसी में सन्तुष्ट रहूंगा। आप द्वारा दिया धन गरीबों में उधार दे दिया। क्या करता? अकाल जो पड़ा था। अनाज था नहीं। लोग भूखों मरने लगे। बिना ब्याज उन्हें पैसा देता रहा। कुछ स्वयं पर भी खर्च कर लिया। वे मुझे पैसा लौटाएं या न, पर हज़ारों लोग भूखों मरने से जरूर बच गए। इसीलिए मैं समझता हूं कि सदुपयोग किया आपके दिए धन का।"

ऋषि मुनिरात ने दोनों की बात ध्यान से सुनी, फिर कहा–"सेठ! तुमने अकाल का नाजायज फायदा उठा लोगों का खून चूसा है। तुमने अनर्थ किया है। जबकि ब्राह्मण भाई! तुमने मरते हुए, जरूरतमन्द लोगों की सहायता कर धर्म का काम किया है। जहां धर्म है, वहीं भगवान हैं अतः तुम ही भगवान के ज्यादा करीब माने जाओगे। शक्ति अनुसार धर्मार्थ काम करते रहना।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत जोगा को भेंट में मिले पीताम्बर ने मोहित किया तो उन्होंने स्वयं को दंडित किया

एक वीतरागी संत हुए हैं–संत जोगा, जो कि महाराष्ट्र के रहने वाले थे। वह भगवद् भक्ति को ही अपने जीवन का आधार मानते। हर समय प्रभु भजन तथा संकीर्तन में लीन रहते।

एक बार उनके भक्त उनके लिए कीमती पीला वस्त्र ले आए। उन्हें भेंट किया। इसे उन्होंने स्वीकार करने से इनकार कर दिया। भक्त कहां मानने वाले थे। उन्होंने इस पीताम्बर को उनके शरीर पर उढ़ा ही दिया। आरती तो हो गई। मगर इसके बाद संत जोगा भजन गाने लगे तो भजन में उनका मन ही नहीं लग रहा था। रह-रहकर ध्यान पीताम्बर की ओर चला जाता। जब संत ने इसे शरीर से अलग किया तब मन भजन में लगा।

संकीर्तन समाप्त हुआ। वह इस वस्त्र को लेकर घर गए। जब वह सोने लगे तो उनका ध्यान पुन: पीताम्बर की ओर गया। इससे उन्हें अपने आप से ही घृणा होने लगी। वह पीताम्बर के मोह से बचना चाहते थे। अपने आपको दंडित करने का भी निर्णय कर लिया। क्या कठोर दण्ड दें, यह निर्णय नहीं हो पाया। रात करवटें बदलते बीती। प्रात: वह घर से निकल पड़े। एक किसान को बैल व हल ले जाते देखा। बैलों का मूल्य पूछा। सारी रकम दे दी। पीताम्बर भी उसी किसान को दे दिया। स्वयं को हल के साथ बांध लिया। फिर बैलों को डंडा मारकर भगाया। बैल तेजी से भागने लगे। संत जोगा का सारा शरीर सड़क पर घिसटने लगा। अंग-अंग जख्मी हो गया। खून निकलने लगा। बेहद पीड़ा होने लगी। मगर उन्होंने उफ नहीं की, बल्कि भगवान भजन में लीन रहे।

ईश्वर से भला क्या छिपा होता है। कुछ भी नहीं। भगवान को अपने इस भक्त पर दया आ गई। उसके कष्ट दूर करने के लिए वह सड़क पर आ रुके। बैलों को रोका। जोगा को उठाया। छाती से लगाया। घावों पर हल्का-सा हाथ फेरकर इन्हें ठीक किया। वह भी ईश्वर का रूप देखकर तथा उनका स्पर्श पाकर धन्य हो उठा। भगवान उसे आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गए। संत जोगा अब पहले से भी अधिक समय व अधिक निष्ठा से प्रभु-भजन करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अमृत बंटा देवताओं में और वे अमर हो गए

इस घमासान युद्ध में देवता पिछड़ गए। दानव जीत गए। देवताओं को अपना अस्तित्व ही खतरे में नजर आ रहा था। वे ब्रह्माजी के पास गए। विष्णुजी के पास भी जाने का अवसर मिला। अपनी फरियाद सुनाई। श्रीविष्णु ने उन्हें रास्ता सुझाया।

देवताओं ने दानवों से दोस्ती का ढोंग रचा। युद्ध बंद हो गया। सबने मिलकर विश्व भर की अमृत युक्त जड़ी-बूटियां इकट्ठी कीं। इन्हें सागर में डाल दिया। मन्दराचल पर्वत को जैसे-तैसे समुद्र के बीचोंबीच ले गए। विष्णु ने इसमें सहयोग दिया। इसे बनाया मथानी, बिलोने के लिए नागराज वासुकि बने रस्सी।

भगवान विष्णु ने नागराज का मुंह बंद कर, सब देवताओं को इसी ओर लगा दिया। दैत्यों ने विरोध किया। वे पूंछ जैसे घटिया अंग को छुएंगे ही नहीं। अब देवता ही पूंछ की ओर खड़े हो गए। वे भी ऐसा ही चाहते थे। दानव आ गए मुंह की ओर।

खूब मंथन हुआ। बहुत से दानव तो नागराज की फुंकार से ही जल मरे। समुद्र मंथन कई दिनों तक चला।

सबसे पहली वस्तु जो समुद्र से निकली, वह था हलाहल। यह विष का कलश कोई लेने को तैयार न था। भगवान शिव आगे आए, इसे गटागट पी गए। रोक लिया गले में, बन गए नीलकंठ।

मंथन तो इसके बाद भी जारी रहा। बहुत कुछ निकलता गया। बंटता भी गया। कामधेनु गाय, ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा अश्व, कल्पतरु, कौस्तुभ मणि निकले। साथ ही साथ निकली सुराकन्या, सुन्दर अप्सरा, लक्ष्मी। एक सबसे बहुमूल्य वस्तु निकली अमृत कलश। यह अमृत देवताओं में बंटा और वे अमर हो गए। दानवों की अमृत पाने की छलपूर्वक कोशिश भी नाकाम कर दी देवताओं ने।

भगवान विष्णु की नीतियों व प्रयासों के कारण इस समुद्र-मंथन में देवताओं को लाभ हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अनन्त भट्ट की पत्नी उनके मामा तथा गुरु की पुत्री थी

अनन्त भट्ट को वेदांत के महान विद्वानों में गिना जाता है। बाल्यकाल में यह बालक बहुत ही साधारण बुद्धि था। उस बालक के सहपाठी रामशास्त्री प्रभुणे तो बचपन से ही प्रखर बुद्धि थे। बहुत अंतर था दोनों में।

अनन्त भट्ट का विवाह छोटी आयु में ही अपने मामा की बेटी से हो गया था। दक्षिण में ऐसा विवाह होना कोई नई बात नहीं। इस प्रकार उसके मामा तथा मामी ही उसके सास तथा ससुर बने। वह पढ़ने के लिए भी उन्हीं के पास रहे। उनके मामा तथा ससुर थे प्रख्यात विद्वान बालभट्ट पायगुंडे। काशी में रहते थे। पाठशाला के मुखिया थे। यह पाठशाला जयपुर राजा द्वारा चलाई जा रही थी। इसमें भानजा व दामाद अनन्त भट्ट भी पढ़ा करता।

वहां सभी विद्यार्थी पंगत में बैठकर एक साथ भोजन किया करते। जो बच्चे बहुत मेधावी, कुशल शास्त्री, षड्दर्शन शास्त्री कक्षा में काफी आगे रहा करते उन्हें तो चांदी की थाली में भोजन परोसा जाता। शेष शिष्यों को केले के पत्तों पर खाना मिलता। इससे एक तो तीव्र बुद्धि विद्यार्थियों की पहचान बनी रहती, दूसरे, शेष विद्यार्थियों में आगे निकलने की होड़ भी बनी रहती।

अनन्त भट्ट ने अपनी सास से कहा कि वह भी चांदी की थाली में भोजन करेगा। बात ससुर तक पहुंची। ससुर ने कहा–"चाहे यह हमारा भानजा है अथवा दामाद है, नियमों का उल्लंघन नहीं हो सकता। यदि तुम उसकी जिद के सामने झुकना चाहती हो तो अपनी रसोई में बिठाओ। चाहे फिर चांदी के बर्तनों में उसे खाना परोसो। पाठशाला में तो पंगत में ही बैठना पड़ेगा।...उसे चांदी के बर्तनों में खाना है तो अपने में योग्यता पैदा करनी होगी। तभी। वैसे नहीं।"

बेचारे को केले के पत्तों पर ही खाना खाना पड़ा। किन्तु उसके कोमल हृदय पर ऐसी ठेस पहुंची कि उसने अत्यधिक परिश्रम करना शुरू कर दिया।

यही मन्द व साधारण बुद्धि वाला बालक अपने परिश्रम से अपने सभी साथियों को पछाड़ता हुआ काफी आगे निकल गया। समय आने पर अनन्त भट्ट वेदान्त का महान विद्वान बना। चांदी के बर्तनों की कमी न थी अब उनके पास।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भीतर से साधु होना ज़रूरी, केवल वस्त्रों से नहीं

टेरी क्षेत्र थी उनकी जन्मभूमि। उन दिनों स्वामी स्वरूपानन्दजी वहां गए हुए थे। उनके साथ भगवानदास, कुंदन सिंह तथा स्वामी सारशब्दानन्द भी थे। एक दिन वे सब कार में बैठकर घूमने निकल पड़े। काफी दूर जाकर उन्होंने कार रुकवाई। सारा पहाड़ी क्षेत्र था। सभी पैदल हो लिए। जंगल था। पठार था। पहाड़ के मनोरम दृश्य।

कुछ ही दूर गए थे कि स्वामीजी एक पत्थर पर बैठ गए। पास ही कल-कल करता पानी बह रहा था। उनकी नजरें पानी में ही एक जगह टिक गईं। चूंकि पानी गेरू की पहाड़ी से आ रहा था इसीलिए रंग पूरी तरह गेरुआ था।

स्वामीजी की नजर पड़ी। पानी में कुछ मरा पड़ा था। उन्होंने उसी ओर संकेत करते हुए पूछा—"सारशब्दानन्द, पानी में क्या है?"

"जी! गधा मरा पड़ा है।"

"देखो तो! इसका पूरा रंग गेरुआ हो गया है। इसका मतलब यह साधु बन चुका है—गेरुआ रंग वाला, गैरिक वस्त्रधारी।" अपने गुरु के मुंह से ये सुनकर वह चकित जरूर हुए किन्तु कोई प्रश्न नहीं किया। अपने शिष्य को यों विस्मित देखकर गुरु ने कहा—"बेटा! देख लो। बाहर से पूरी तरह साधु लग रहा है। किन्तु यह साधु है नहीं, गधा ही है। अन्दर से तो पूरी तरह गधा है।"

"जी! गुरुदेव।"

"इसी प्रकार जो व्यक्ति गेरुए वस्त्र पहनकर अपने को साधु घोषित कर देते हैं वे साधु नहीं होते, जैसे कि यह गधा भी साधु नहीं है।...जो व्यक्ति अपने आपको अन्दर से बदलकर साधु बन जाता है, वही साधु है। ऐसे में यदि वे गेरुए वस्त्र पहन लें तो उनकी ओर आसानी से ध्यान चला जाता है।...केवल सन्तों के से वस्त्र पहन लेना काफी नहीं होता।...इसीलिए तो लोगों का विश्वास संतों, साधुओं की ओर से उठता जा रहा है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पत्थर की मूर्ति पर फूल न चढ़ाकर साफ-सफाई करना ज़्यादा बेहतर

'ऋषमोचन' गांव अमरावती के करीब स्थित है। यहां पर हर वर्ष पौष के महीने में एक बड़ा मेला लगता है। इसमें भाग लेने के लिए दूर-दूर से लोग पहुंचते हैं। भक्तों की भीड़ तो होती है मगर वहां साफ-सफाई का कोई उचित प्रबन्ध नहीं होता। इससे वहां रोग-महामारी के फूटने का भय बना रहात है। सन् 1907 के मेले में एक युवक गाडगे महाराज ने सफाई के काम को अपने हाथ में लिया। इसके लिए न तो उन्होंने सरकारी विभागों से कहा, न ही अन्य लोगों को इस काम के लिए बुलाया। वह अकेले लग गए इस कार्य में।

इस युवक ने नदी के पास लोगों के स्नान के लिए स्थान तैयार किया। रास्ता ठीक किया। जहां कटाई करनी आवश्यक थी वह भी स्वयं की। अपना पसीना बहाकर लोगों को सुविधाएं दीं। अकेले हाथ में झाडू लेकर, झाडू लगाए। जूठे पत्तल इकट्ठे कर, इन्हें ऐसी जगह पहुंचाया कि मेला में आने वाले श्रद्धालुओं को कोई परेशानी न हो।

उन्हें काम करते देखने लोग जरूर पहुंचते। अपनी जिज्ञासा शांत करते। मगर उनका हाथ बंटाने के लिए कोई भी आगे नहीं आया। फिर भी वह अकेले सेवा कार्य में लगे रहे।...जब उनकी माता को पता चला तो वह तेजी से आईं। बेटे को घर चलने के लिए कहा। गन्दगी में हाथ डालने तथा सफाई कर्मचारियों की तरह झाडू देने से इनकार कर दिया।

बेटे गाडगे ने मां को समझाया—"मां! यह काम किसी और का नहीं। हमारा अपना है। मैं अपने आसपास के लोगों को भगवान का ही रूप मानता हूं। उनकी सेवा करना भगवान की सेवा है। पत्थर की मूर्ति के सामने फूल रखने की बजाय, सफाई करना और भूखों को रोटी देने की व्यवस्था करना हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। यही सत्य भी है।"

"बेटा! मैं मान गई। तुमने जो रास्ता अपनाया है, वही सही है। मेरी शुभ कामनाएं।" कहकर मां घर लौट गईं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गोरखनाथ ने जिस संत को अपनी सिद्धियां दीं उसने उन्हें गंगा में प्रवाहित कर दिया

गुरु गोरखनाथजी ने लम्बी साधना से अनेक सिद्धियां हासिल कर ली थीं। वह नहीं चाहते थे कि ये सब उनके साथ बनी रहें, अथवा जब वह इस दुनिया से जाएं तो ये भी खत्म हो जाएं। इसीलिए उन्होंने इसके लिए सुपात्र की तलाश शुरू कर दी। ऐसा योग्य व्यक्ति चाहिए था जो इन्हें सम्भाल सके। इनका सदुपयोग कर सके।

वह जहां भी जाते, ऐसे ही योग्य पुरुष की तलाश भी किया करते।...एक बार जब वह वाराणसी गए तो उन्हें एक संन्यासी दिखाई दिए। वह गंगा के तट पर बैठे अपने दण्ड को गंगा में प्रवाहित कर रहे थे। उन्हें यही व्यक्ति सुपात्र लगा।

गोरखनाथजी उनके पास गए। हाथ जोड़कर कहने लगे–"मुझे आप जैसे त्यागी पुरुष की तलाश थी। आपके दर्शन कर बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। मैं नहीं चाहता कि मेरी साधना तथा प्राप्त सिद्धियां कभी मुझे पथ से विचलित या विमुख कर दें इसीलिए मैं इन्हें आपको दान में देना चाहता हूं। क्या आप इन्हें स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करेंगे?

इतना सुनते ही संन्यासी ने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए। उनसे सिद्धियों को अंजलि में स्वीकार करने की मुद्रा बना दी और कहा–"मैं आपकी सभी सिद्धियां सहर्ष स्वीकार करता हूं।" और फ़िर उन्होंने अंजलि को गंगा के प्रवाह में झोंक दिया।

इसे देखकर गुरु गोरखनाथजी को बहुत ही प्रसन्नता हुई। बोले–"आप सचमुच उच्च कोटि के सन्त संन्यासी हैं। दुर्लभता से प्राप्त हो सकने वाली सिद्धियों को आपने जल में अर्पण कर अपनी महानता का बड़ा उदाहरण पेश किया है। आपको मेरा पुनः-पुनः नमन।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महात्मा याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को आत्मा की परिभाषा समझाई

जहां राजा जनक और महर्षि याज्ञवल्क्य एक साथ बैठे हों, वहां धर्मचर्चा होना निश्चित था। आज भी ऐसा ही हुआ। राजा जनक ने प्रश्न किया—"हम किस ज्योति से देखते हैं।"

"सूर्य की ज्योति से।" महर्षि का उत्तर था।

"यदि सूर्य न हो तो?" राजा जनक ने पूछ लिया।

"चन्द्रमा के प्रकाश से।"

"यदि सूर्य चन्द्रमा, तारे न हों तो हम किसकी ज्योति से देखते हैं, बताएं?"

"शब्दों की ज्योति हमें राह दिखाती है। हम रात के समय, गहरे जंगल से निकलते हैं। काली रात में जो हमारा मार्ग प्रशस्त होता है, वह शब्दों के प्रकाश से।...कहीं दूर से कोई आवाज आती है तो हम उसी के सहारे उसी दिशा में पहुंच जाते हैं।"

"महर्षि! यह तो बताएं कि यदि शब्द भी न हों तो हमें रास्ता कौन दिखाता है? कौन ज्योति काम करती है?"

"राजन! तब भी कोई चिन्ता की बात नहीं। हम आत्मा की ज्योति से देखते हैं।"

"केवल अंतिम प्रश्न! आत्मा क्या है? महर्षि बताएं।"

"शरीर के अन्दर जो विशेष ज्ञान से भरपूर है, जीवन तथा ज्योति से भरा हुआ है, जो मनुष्य के हृदय में जीवन है, और...जो अन्तःकरण में ज्योति है...तथा यह पूरे शरीर में पूर्णतः विद्यमान है उसे ही तो आत्मा कहते हैं।...जब सूर्य, चन्द्रमा, तारे, शब्द कुछ भी उपलब्ध न हो तो आत्मा हमें मार्ग दिखाती है।" महर्षि याज्ञवल्क्य ने राजा जनक को आत्मा की परिभाषा बताई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत त्सुचि ने विशाल पेड़ देखा जिसकी लकड़ी व्यर्थ थी, वैसे ही जैसे बड़े डील-डौल वाले कुछ लोग

शाङ पर्वत! इसके एक छोटे से मगर छायादार वृक्ष के नीचे बैठे थे सन्त त्सुचि। वह नानपोह के रहने वाले थे। भ्रमण करते हुए पर्वत की चोटी पर आ बैठे थे। तभी उन्हें एक विशालकाय वृक्ष दिखाई दिया जो उनसे काफी दूरी पर था। इतने बड़े वृक्ष को करीब से देखने की जिज्ञासा हुई। उठे और चल पड़े। रास्ते में उस वृक्ष की लकड़ी तथा अन्य खूबियों पर चिन्तन करते चलते रहे। बहुत ही उपयोगी तथा लाभकारी होगा यह।

इस प्रकार सोचते हुए सन्त त्सुचि उस वृक्ष के पास जा पहुंचे। विशालकाय वृक्ष के नीचे खड़े थे वह। इसका बारीकी से निरीक्षण आरम्भ कर दिया।...जब इसको ध्यानपूर्वक देखा तो पता चला कि इसकी सभी शाखाएं खूब टेढ़ी-मेढ़ी थीं। वह सोचने लगे–'अरे! इससे तो जहाजी बेड़ा बनाना भी सम्भव नहीं...ओह! इसके तने में तो ढेरों गांठें हैं। इसे काटकर, चीरकर तख्ते निकाल पाना भी सम्भव नहीं। ताबूत के लिए भी तख्ते नहीं निकाले जा सकते।...बेकार लकड़ी...।" कहते-कहते उन्होंने उस वृक्ष का एक पत्ता तोड़ लिया। मुंह में डाला, चबाया। चबाते ही उनकी जीभ व ओंठ ही छिलने लगे। इतना तीखा कि थूक-थूककर भी मुंह का स्वाद सामान्य नहीं हो पाया। कुछ-कुछ चक्कर से भी महसूस करने लगे।

गम्भीर हो गए सन्त त्सुचि! मन ने कहा–कितना बेकार है यह विशाल वृक्ष! किसी तरह भी उपयोगी नहीं।...कुछ मनुष्य भी ऐसे होते हैं, जो देखने को तो महान, बड़े डील-डौल वाले लगते हैं मगर उनकी किसी के लिए भी उपयोगिता नहीं होती।...इस बहुत बड़े वृक्ष की भांति बेकार।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराजा भोज ने एक ही परिवार के चार सदस्यों को श्रेष्ठ कवि मानकर पुरस्कृत किया

भारतीय इतिहास तथा साहित्य में महाराजा भोज का विशेष स्थान रहा है। वह कवि हृदय थे, इसलिए कवियों का बहुत सम्मान करते थे। वह रसिक थे, इसलिए ऐसे कविता पाठ भी पसंद कर लिया करते। वह विद्वान थे, इसलिए विद्वानों को अपने दरबार में सम्मानित करने में प्रसन्नता महसूस करते। कवियों, गीतकारों, विद्वानों को वह खूब पुरस्कृत करते। भारी मात्रा में धन देकर उनके ज्ञान की कद्र करते।

एक बार उनके दरबार में एक ही ब्राह्मण परिवार के चार सदस्य आए। पिता, माता, पुत्र तथा बहू। चारों अच्छे कवि थे। विद्वान भी। उन्हें धार्मिक ग्रंथों व घटनाओं का अच्छा ज्ञान था। महाराजा भोज ने उन्हें आसन दिया। उनके सामने एक पंक्ति रखते हुए कहा कि वे समस्यापूर्ति करें। बहुत अच्छी समस्यापूर्ति करने वाला एक लाख मोहरें प्राप्त करने का अधिकारी होगा। भरे दरबार में महाराजा भोज ने उन चारों के सम्मुख जो चरण दिया वह यह था—क्रिया सिद्धिः सत्वे वसति महतां नोपकरणे।

ब्राह्मण ने जो चार पंक्तियां सुनाकर समस्यापूर्ति की उसका निचोड़ निकला—महापुरुषों की सिद्धि उनके गुणों पर निर्भर करती है, बाह्य उपकरणों पर नहीं।

ब्राह्मण-पत्नी ने भी एक बहुत अच्छा श्लोक तैयार कर सुना दिया। यह अगस्त्य मुनि से सम्बन्धित था। जबकि उसके पति का श्लोक सूर्य से सम्बन्धित था।

ब्राह्मण-पुत्र ने भी महाराजा भोज के सम्मुख जो चार पंक्तियां पेश कीं वह लंका नरेश से सम्बन्धित थीं। इसका सार भी पहले जैसे दोनों श्लोकों की तरह था।

जब बहू से समस्यापूर्ति को कहा गया तो उसने कामदेव से जुड़ी चार पंक्तियां रखीं। इसका भाव भी यही था कि महापुरुषों की सिद्धि उनके गुणों पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निर्भर करती हैं, बाह्य उपकरणों पर नहीं।

महाराजा भोज को चारों विद्वान लगे। चारों उच्च कोटि के कवि लगे। चारों ही एक-दूसरे से अधिक विद्वान साबित हुए। महाराजा भोज को अत्यंत प्रसन्नता हुई। कोई भी श्लोक किसी दूसरे से कम नहीं था। अत: महाराजा ने उन चारों को एक-एक लाख मोहरें देकर पुरस्कृत किया। उन्हें यह सम्मान देते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जनक की सवारी के लिए राजमार्ग बंद करने का विरोध किया अष्टावक्र ने

राजा जनक ने राजमार्ग पर आना था। उनके रथ को रास्ते में कोई व्यवधान न झेलना पड़े इसलिए राजमार्ग जन-विहीन किया जा रहा था। लोगों को अन्य रास्तों से आने-जाने की इजाजत तो थी, मगर राजमार्ग से नहीं। राजा की सवारी गुजर जाने के बाद ही राजमार्ग आम लोगों के लिए खोला जाना था।

इसी बड़ी सड़क पर महामुनि अष्टावक्र भी जा रहे थे। उन्होंने राजा के लिए अपना मार्ग बदलना स्वीकार नहीं किया। बल्कि कह दिया कि उन्होंने अपनी सुविधा के लिए यह गलत काम किया है। प्रजा जनों के कार्यों में यों बाधा डालना राजा के लिए अनीति का कार्य है। मेरी बात राजा तक पहुंचा दें।

अधिकारियों व पुलिस के समझाने पर भी वह नहीं माने। अंत में उन्हें बन्दी बना लिया गया। राजा के सामने ले गए। उनके द्वारा किए अपराध की राजा जनक को जानकारी दे दी। उचित दण्ड देने की प्रार्थना की।

राजा जनक ने पूरी बात शांत मन से सुनी। फिर बोले-"ऋषिवर के साहस की हम प्रशंसा करते हैं। इन्होंने हमारे गलत कार्य की हमें जानकारी देकर हम पर उपकार किया है, यह अपराधी नहीं एक साहसी सत्पुरुष हैं! इन्हें दण्ड नहीं, पारितोषिक मिलना चाहिए। हम ऋषिवर के कहे अनुसार अपने में सुधार लाने को तैयार हैं। भविष्य में ऐसी कोई गलती हमसे न हो, इसे मुनिवर अष्टावक्र ही देखेंगे। आज से मैं इन्हें राजगुरु के पद पर सुशोभित करता हूं। मैं उम्मीद करता हूं कि भविष्य में भी राजगुरु केवल न्याय पक्ष का ही समर्थन करेंगे। हमारे हर गलत कार्य को रोकने का अधिकार होगा इन्हें।"

राजा जनक ने महामुनि अष्टावक्र के पक्ष को पूरी तरह उचित बताकर अधिकारियों व पुलिस को भी चकित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शिव तथा नारद भी नहीं समझ पाए माया के रूप 'परा' व 'अपरा'

सोम शर्मा ने जहां घोर तप किया, उसे कई नामों से जाना जाता है जैसे कुब्जाम्रक धाम, हृषिकेश, कुशावर्त क्षेत्र आदि। इसे ही आज ऋषिकेश लोकप्रिय नाम से जानते हैं। यही माया तीर्थ भी है। शीत-ऋतु में रक्त जमा देने वाली ठंड में नंगे बदन, बरसात में मूसलाधार वर्षा में तथा भीषण गर्मी में अपने तन के चारों ओर आग जलाकर तप किया था सोम शर्मा ने। वह अन्न तथा जल ग्रहण न करके एक पांव पर अनेकों वर्षों तक तप करते रहे।

भगवान विष्णु प्रसन्न हुए। उनसे उनकी माया के दर्शन पाने की प्रार्थना की। परा और अपरा माया के दो रूप हैं जिनको न शिव समझ सके न ही नारद। तुम्हें इनके दर्शन नहीं हो सकते। इन्हें पाना तुम्हारे लिए अहितकर होगा।

भगवान चले गए। सोम शर्मा अपनी अधूरी आस को पूरा करने के लिए दोबारा तप में बैठ गए। हारे नहीं। अब फिर श्रीहरि आए। अपनी माया के दर्शन भी करा दिए।

तद्पश्चात एक दिन सोम शर्मा स्नान के लिए गंगा तट पर गए। उन्हें कछुआ निगल गया। स्वर्ग में पहुंचे। एक हजार वर्षों तक स्वर्ग के सुखों को भोगते रहे। फिर राजा की योनि में जन्म लिया। राजपाठ का सुख लिया। मरने पर फिर स्वर्ग मिला। सोम शर्मा कई-कई योनियों के कष्ट सहता रहा। एक बार फिर स्त्री रूप में जन्म लेना पड़ा एक निषाद के रूप में। किसी भील से शादी हुई। स्त्री रूप पाकर बहुत रोया पर क्या करता? हठ करके माया के दर्शन किए इसीलिए माया में फंसा रहा।

पचास साल की आयु में, गंगा स्नान करते समय एक बार फिर कछुआ उसे खा गया। इस बार फिर उसे सोम शर्मा की ही देह मिली। उसका पति उसे ढूंढता हुआ गंगा तट पर आया। सोम शर्मा ने कहा कि मैं ही तुम्हारी पत्नी थी। अब अपने असली पुराने रूप में सोम शर्मा बना हूं। भील की प्रार्थना पर वह उनके घर पहुंचा। मगर उसे अपने बच्चों की जगह दण्ड, कमण्डल, साधुओं के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कपड़े ही दिखाई दिए। बच्चे नहीं।

अब सोम शर्मा की आंखें खुल चुकी थीं। उसे श्रीहरि के शब्द याद आ रहे थे। उन्होंने अपनी माया के दर्शन न देने को कहा था। यदि उनकी बात मान जाता तो अनेकों योनियों के कष्ट न सहने पड़ते।

यही तो भगवान का माया-जाल है। अब खूब समझ गया था वह।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

उपदेश ने उन्हें अहंकार-मुक्त कर दिया

स्वामी मधुसूदन सरस्वती उन दिनों पश्चिमी बंगाल में ही थे। उन्होंने शास्त्रार्थ में बड़े-बड़े पंडितों के दांत खट्टे किए थे। उन्हें पराजित किया था। चारों ओर से उन्हें वाहवाही मिल रही थी।

स्वामीजी पश्चिमी बंगाल से चलकर काशी पहुंचे। उनके काशी पहुंचने से पूर्व ही उनकी ख्याति वहां पहुंच गई। यहां आते ही उनके शास्त्रार्थों का डंका बजने लगा। कुछ दिनों के प्रवास के बाद महान वेदांत शास्त्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती की इच्छा हुई कि वह वृद्ध दिगम्बर संत के दर्शन करें। इसी इच्छा से वह उनकी कुटिया में पहुंचे। उनके एक करीबी शिष्य ने स्वामीजी का परिचय दिया। साथ ही कह दिया—"संतजी! आप वही स्वामी हैं जिन्होंने शास्त्रार्थ में अनेक पंडितों को हरा दिया है। लोग इनकी प्रतिभा की दाद देते हैं।"

"आइए! विराजिए।"

बैठ जाने के बाद स्वामी मधुसूदन ने विनयपूर्वक कहा—"मैं आपका आशीर्वाद तथा आशीर्वचन पाने आया हूं। कोई ऐसी कृपा करें कि भगवान श्रीकृष्ण से साक्षात्कार हो जाए।"

"जरूर! जरूर होगा साक्षात्कार मगर इसके लिए आपको तैयारी करनी होगी।"

"कैसी तैयारी?"

"तुम संन्यासी हो। अच्छी बात है। अपनी विद्वता का जो अहंकार पाल रहे हैं वह बहुत बुरी बात है। सभी विद्वान अपनी-अपनी जगह ठीक हैं किन्तु उन्हें शास्त्रार्थ के लिए आवाहन करना, आमने-सामने बैठना, मुकाबला करना तथा उन्हें पराजित करना तुम्हारे लिए ठीक नहीं। इससे उनके दिलों को बहुत ठेस पहुंचती है। यह तुम्हारा प्रपंच है। इसे त्यागना ही भगवान कृष्ण से साक्षात्कार करने की तैयारी है। बोलो, स्वीकार है?"

उसी घड़ी स्वामी मधुसूदन सरस्वती ने शास्त्रार्थ की स्पर्द्धा से दूर रहने, प्रेम तथा साधना में लीन होने का निश्चय कर लिया। इसे पूरी तरह निभाया भी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत ने सेठ से मिली मखमली जैकेट को उल्टा पहन तसल्ली कर ली

"सन्तजी! मैंने आपके नाप की एक बढ़िया मखमल की जैकेट तैयार करवाई है। इसे पूरी श्रद्धा के साथ यहां लाया हूं। कृपयां आप इस भेंट को स्वीकार करें।" एक व्यापारी ने सन्त तुकाराम के चरणों के पास बैठते हुए कहा।

"नहीं। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूं। पिछली बार आज से 5-6 दिन पूर्व जब तुम यहां आए तो तुम्हें बड़ा दुख हुआ। तुमने मन ही मन मेरे मोटे और फटे-पुराने वस्त्रों की अपने साफ-सुथरे बढ़िया वस्त्रों के साथ तुलना की...और तभी एक निर्णय लिया। उसी का परिणाम है यह जैकेट...ठीक?"

'संतजी! आप तो मेरे मन की जानते हैं। फिर यह भी जानते होंगे कि यह निष्ठापूर्वक लाया हूं। दिखावा नहीं। स्वीकार कर कृतार्थ करें।" सेठ ने उन्हें विनयपूर्वक कहा।

"ठीक है। छोड़ दो इसे यहीं।"

"मैं कल फिर आऊंगा। देखना चाहूंगा कि आपने इसे पहन लिया है।" व्यापारी का यह भक्तिपूर्वक आग्रह था। वह सुनकर मुस्करा दिए।...जब अगले दिन वह आया तो देखकर चकित हुआ। संत ने जैकेट पहनी जरूर, मगर उल्टी।... व्यापारी ने इसे पहनने के लिए धन्यवाद किया साथ में कहा—"इसे उल्टा क्यों पहना?"

"अरे! ठीक ही तो पहना है। सच यह है कि इस तरह पहनने से मखमल का शरीर को सुख मिल रहा है। अन्दर का अस्तर जो बाहर नजर आ रहा है यह तो लोगों के दिखाने वास्ते है कि सन्त महंगा वस्त्र नहीं पहनते।"

व्यापारी समझ गया कि संतों का हृदय इतना शुद्ध, पवित्र व निर्मल होता है कि उन्हें अपने पहरावे से कोई लगाव नहीं होता। वे प्रभु नाम में ही मस्त रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शाश्वत दान पा लिया बालक ने पेशवा से

पेशवा के महल के बाहर लोग इकट्ठे थे। वे पंक्तिबद्ध आते। पेशवा के हाथों दान पाते। उन्हें अन्न, कपड़ा, जेवर दान में दिया जा रहा था। वे पेशवा को आसीस देते। उनकी लम्बी आयु की कामना करते। उनके लिए सफलता की प्रार्थना करते। दान लेकर आगे चले जाते।

"मुझे आपका यह धन, दौलत, सोना-चांदी, वस्त्र कुछ भी नहीं चाहिए।" पंक्ति में खड़े, अपनी बारी में आगे पहुंचे बालक ने पेशवा से कह दिया। वह अपनी बात कहते समय पूर्णतः निडर व गंभीर बना खड़ा रहा।

पेशवा का आगे बढ़ा हुआ हाथ वहीं रुक गया। हाथ में रखे वस्त्र और कुछ राशि उनके हाथ में ही रह गई। पेशवा ने पूछ लिया–"निर्भीक बालक! यदि तुम्हें यह सब नहीं लेना था तो पंक्ति में क्यों खड़े हुए?"

"श्रीमान! मैं भी और लोगों की तरह जरूरतमंद हूं। मुझे भी आपसे दान चाहिए। किन्तु यह नश्वर हो जाने वाला धन-कपड़ा नहीं चाहिए।"

"तो फिर तुम्हें क्या चाहिए? जरा बोलो तो।"

"मुझे आपसे शाश्वत दान चाहिए। सदा बना रहने वाला दान।"

"क्या है वह?"

"विद्या!...विद्यादान...विद्या का दान आपसे चाहिए मुझे।"

"ठीक है। अवश्य मिलेगा ऐसा ही दान।" कहते-कहते पेशवा ने बालक को शिक्षा हेतु काशी भेजने का आदेश दे दिया।...उचित प्रबन्ध के लिए कह दिया। और...राजकोष से उस बालक की शिक्षा चलने लगी। बालक योग्य था। अध्ययन के प्रति गम्भीर था। यही बालक राम शास्त्री बनके काशी से लौटा। अपनी विद्या बल के आधार पर खूब यश पाया उन्होंने। खूब ख्याति मिली उन्हें।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

महाराज मान्धाता ने विन्ध्य पर्वत की अर्चना कर दर्शन पाए शिव के

"विन्ध्य! तुम पिछले छह महीनों से लगातार तप में लीन हो। मांगो! आ गया समय मनवांछित फल पाने का। यहां उपस्थित अनेक ऋषि-मुनियों की उपस्थिति में तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करना चाहता हूं।" सुगमता से कृपा कर देने वाले भगवान शिव विन्ध्य पर्वत की तपस्या पर तो प्रसन्न होने ही थे। उन्होंने स्वयं प्रकट होकर यह कहा और वर मांगने का अवसर प्रदान किया।

"प्रभु! आपके दर्शन हो गए...क्या यह कम है। फिर भी मेरी हर मनोकामना से आप परिचित तो हैं ही। मुझसे क्या पूछना।"

"ठीक है! मैं तुम्हारी हर कामना को पूरा होने का वर देता हूं। साथ-ही-साथ अपने इस ओंकेश्वर रूप को दो भागों में बांट रहा हूं– एक तो ओंकेश्वर ही कहलाएगा...दूसरा अमलेश्वर। अलग-अलग होते हुए भी इसकी सत्ता एक ही होगी...नर्मदा में स्नान कर, इन दोनों रूपों के दर्शन तथा परिक्रमा करने से लौकिक-परलौकिक, दोनों फलों की प्राप्ति होगी...युगों-युगों तक लोग लाभ उठाते रहेंगे।"

ये दोनों लिंग (आज के मध्य प्रदेश में) नर्मदा नदी के तट पर स्थित हैं। यहां नर्मदा भी दो भागों में विभक्त होकर बीचोंबीच मान्धाता टापू बन गया है। विन्ध्य पर्वत की अर्चना से काफी पूर्व महाराजा मान्धाता ने भी शिव को प्रसन्न कर यहां पर दर्शन पाए थे।

पर्वत के अन्दर, अंधेरे में, प्रकृति ने एक लिंग का निर्माण किया, जहां पर शिव वास करते हैं। अब सारा-का-सारा पर्वत ही शिवपुरी के नाम से जाना तथा पूजा जाता है।

जो भी भक्त श्रद्धापूर्वक वहां जाता है, लाभ उठाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बिना विश्वास व निष्ठा सब बेकार

आज हम एक ऐसे महात्मा की बात कर रहे हैं, जो बहुत ही पहुंचे हुए थे। उनके जप-तप और प्रभु भक्ति का यह आलम था कि उनका मूत्र-विष्ठा, थूक, सब चमत्कारी कार्य करने थे। उन्हें इस सिद्धि से कोई सरोकार न था।...वह मुंह से जो कहते, सच हो जाता।

एक बार उस समय के राजा अपनी छोटी रानी से किसी बात पर रुष्ट हो गए। बोलचाल बंद हो गयी। छोटी रानी ने कई उपाय किए। किन्तु वह सफल नहीं हो पाई। किसी के सुझाव पर वह आनन्द खण्ड महात्मा के पास जा पहुंची। अपनी समस्या बताई। महात्मा ने एक छोटा कागज लिया। उस पर कुछ लिखा। कागज आगे कर दिया। मुंह से एक शब्द भी नहीं बोला।

छोटी रानी ने समझा कि यह ताबीज है। उसने भी इसे लपेटा, घर जाकर अपनी बाजू पर बांध लिया। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि कुछ देर बाद राजा ने रानी से बोलना शुरू कर दिया। छोटी रानी बेहद खुश। बड़ी रानी के मन में ईर्ष्या जागी। अब फिर से उसकी कदर घटने लगी। वह भी उन्हीं महात्मा के पास चली गई। पूछा–"आपने क्या जादू कर दिया कि राजा अपनी छोटी रानी के करीब आ गए।...मेरी फिर से अवहेलना होने लगी है।...उपेक्षा ही उपेक्षा।"

"मुझे तो कुछ याद नहीं।" छोटी रानी को बुलवाया गया। उस कागज की पर्ची के विषय में पूछा। बाजू से पर्ची खुली। उस पर लिखा था–राजा अपनी किसी रानी से बात करे या न करे, आनन्द खण्ड को क्या फर्क पड़ता है।

इस पर्ची को ही ताबीज मान लिया था छोटी रानी ने। यह उसकी अगाध श्रद्धा का एक उदाहरण है। निष्ठा की बात है या यों कहें कि आनन्द खण्ड महात्मा में ही इतना प्रताप था कि उनको अपनी समस्या सुना देने मात्र से हल निकल जाता।

विश्वास हो तो सब ठीक। यदि निष्ठा व विश्वास की कमी हो तो सब बेकार। न आशीर्वाद काम आता है और न अच्छी से अच्छी दवा ही।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नाराज अगस्त्य ने एक ही घूंट में पूरा सागर पी डाला

समुद्र ने अपने सहयोगी को आदेश देते हुए कहा था–"सुनो! मैंने एक बड़ी दावत का आयोजन किया है। सब देवी–देवताओं, ऋषियों–मुनियों को आमन्त्रित करें।"

जब निमन्त्रणपत्र बनकर हस्ताक्षरों के लिए आए तो समुद्र ने अगस्त्य ऋषि का निमन्त्रणपत्र हटा दिया जान–बूझकर। एक पुरानी नाराजगी जो थी।

जब अगस्त्य को सागर के इस अशोभनीय व्यवहार का पता चला, तो वह चुप न बैठे। क्रोध में आग–बबूला होकर सागर के अस्तित्व को मिटा देने की सोची। उन्होंने एक घूंट में ही सारा समुद्र पीकर उसे सुखा डाला।

अब समुद्र ने लाख हाथ–पैर मारे। छूटने की कोशिश की। मगर छुटकारे का कोई मार्ग न मिला। देवी–देवताओं से सागर की यह दुर्दशा देखी न गई। उन्होंने बीच–बचाव कर, ऋषि से समुद्र के लिए क्षमा–दान मांगा।

अन्ततः ऋषि मान गए। पर उन्होंने सागर को लघुशंका के द्वारा ही मुक्त किया। जल को पीने के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया। उसी दिन से सागर का जल खारा हो गया। यही मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अहंकारी स्वर्ग का अधिकारी कभी नहीं हो सकता

"मुनिदेव! मैं कर्मकाण्ड में विश्वास करता हूं। अनेक यज्ञ किए। एक और यज्ञ की तैयारी में हूं। उसी की चिन्ता है।" प्राचीनबर्हि राजा ने देवराज इन्द्र के प्रश्न का यह उत्तर दिया

"किसलिए?...बार-बार यज्ञ क्यों?"

"मैं इस जीवन में खूब कीर्ति बटोरना चाहता हूं। मृत्यु के बाद स्वर्गलोक जाने की इच्छा है। तभी अपने धन बल से इस उद्देश्य की प्राप्ति कर रहा हूं। कहीं कोई कमी न रह जाए यही चिन्ता है। इसी के लिए सचेत हूं।"

"राजन! तुम धर्मी नहीं अधर्मी हो। अपने नाम का डंका बजाना चाहते हो। अपनी प्रशंसा चाहते हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, तुमने कई जीवों पर अनर्थ भी किया। वध करवाए। बलि दी। यह ठीक नहीं।"

"क्या करता देवर्षि! जैसा मुझे बताया गया, मैं वैसा कर्म करता गया। पूजा की विधि नहीं जानता मैं।"

"राजन! अब अपने विचार शुद्ध करो। कर्म वह होना चाहिए जिससे ईश्वर प्रसन्न हों।...तुम्हारा आचार व्यवहार ठीक नहीं। तुम अभिमानी हो चुके हो। अपनी प्रशंसा के भूखे हो। अब मैं-मैं की रट छोड़कर तू-तेरा की सोच बनाओ। याद रहे, अहंकार कभी स्वर्ग को नहीं ले जाता।"

"ओह! मैं गलत था देवमुनि नारद!" कहते-कहते राजा प्राचीनबर्हि ने अपना राज-पाठ त्याग दिया। स्वयं कपिलाश्रम को चला गया। राजधानी छोड़ दी जप-तप के लिए। स्वर्ग प्राप्ति थी इच्छा। मेरा-मेरा छोड़ तेरा-तेरा करने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

निम्न जाति के शिष्य कनकदास के गुणों की सराहना की गुरु व्यासराम ने

कनकदास उन बहुत से शिष्यों में से एक थे जो सन्त व्यासराम के आश्रम में रहकर अध्ययन में लीन रहा करते। चाहे कनकदास एक निम्न जाति से सम्बन्ध रखता था, तो भी गुरु की उन पर विशेष कृपा बनी रहती। यह देखकर अन्य शिष्य उनसे ईर्ष्या करते। किन्तु उनके मन में अपने गुरु-भाइयों के प्रति कोई रोष नहीं था।

एक दिन गुरु व्यासराम ने अपने सभी शिष्यों को एक-एक केला देते हुए कहा–"तुम सब इस केले को ऐसी जगह जाकर खाओ, जहां तुम्हें कोई भी अन्य न देखे।"

सभी शिष्य अपना-अपना केला लेकर चले गए। एकान्त ढूंढकर खाने लगे।

कुछ देर बाद गुरु ने उन्हें बुलाया। सबने कहा कि उन्होंने ऐसा स्थान ढूंढ़ा जहां उन्हें कोई नहीं देख रहा था। अत: केले को चबा-चबाकर खा लिया। जब सब अपनी-अपनी बात कह चुके तो गुरु ने कनकदास के हाथ में केला देखकर पूछ लिया–"क्या तुम्हें केला खाना पसंद नहीं अथवा...?"

"गुरुजी। मैं भी केला तो खाना चाहता था किन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं मिला जहां पर भगवान विद्यमान न हों। यदि मैं इसे खाता तो वह जरूर देख लेते। इस प्रकार आपकी आज्ञा का पालन नहीं होता।"

"तुम ठीक कहते हो कनक। ईश्वर सब जगह है। वह हमारे सभी अच्छे व बुरे काम देख रहा है। अत: ऐसा एकान्त स्थान ढूंढ़ पाना कठिन होता है जहां ऊपर वाले की नजर न हो।" थोड़ा रुककर सन्त व्यासराम ने कहा–"जो शिष्य अपने सहपाठी कनकदास से ईर्ष्या व द्वेष रखते हैं, गलत हैं।...यह एक ऐसा विद्यार्थी है जो सचमुच दूसरों से काफी भिन्न है, इसीलिए मुझे प्रिय है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भक्तों की इच्छा के अनुरूप भगवान ने युग-क्रम ही बदल दिया

मान्यता है कि युगों का क्रम बदल दिया गया।

वास्तव में चार युग इस क्रम में होने थे–सतयुग, द्वापर, त्रेता तथा कलयुग। किन्तु ऐसा नहीं हो पाया।

गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या शाप के कारण जड़ रूप में पड़ी थीं। ऋषि उसे चेतना अवस्था में लाना चाहते थे। यह चेतनावस्था तभी आ सकती थी जब भगवान राम अवतार लेकर अहल्या को अपने पांव से छू लें। श्रीराम का अवतार भी त्रेतायुग के लिए पूर्व निश्चित था। मगर सतयुग के बाद त्रेतायुग काफी दूर था। बीच में एक पूरा का पूरा युग द्वापर भी आना था।

समस्या भगवान तक पहुंची। महर्षि गौतम के अनुनय-विनय पर गौर हुआ बड़ी ही गम्भीरता से, वह भी उच्चतम स्तर पर। भगवान ने भक्त को प्रसन्न कर देने का निश्चय कर ही लिया। उनकी इच्छा के अनुरूप ईश्वर ने युग-क्रम ही बदल डाला। ऋषि के लिए नियमों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। सतयुग के बाद त्रेता ले आए। द्वापर को आगे धकेल दिया गया।

भगवान भक्त के वश में होते हैं, इस उक्ति को चरितार्थ कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भगवान कृष्ण ने स्वप्न में फटकारा विद्वान भट्टतिरि को

"मैं अपनी एक कविता लेकर आपके पास आया हूं। यह कविता मलयालम में है। आप संस्कृत के तो माने हुए विद्वान कवि हैं, आपको मलयालम का भी अच्छा ज्ञान है। इसी आशा के साथ आया हूं कि आप मेरी कविता पढ़कर, इसकी कमियां दूर कर, इसे शुद्ध कर देंगे।" केरल के कवि पूंतानम नंपूतिरि ने अपने परम मित्र मेलपत्तूर नारायण भट्टतिरि से कहा।

भट्टतिरि ने संस्कृत की बजाय मलयालम की कविता पर गौर करना अपने स्तर से नीचे की बात मानी। अतः इसी आधार पर कोई बहाना बना इनकार कर दिया। साथ ही कह दिया कि वह किसी मलयालम कवि को ही मिलें। नंपूतिरि बहुत निराश हुए और खिन्न मन से लौट गए।

रात के समय भट्टतिरिजी के पेट में काफी दर्द होने लगा। साथ ही साथ वातज रोग भी हो गया। बड़ी कठिनाई होने लगी। एक बार पहले भी उन्हें इस कष्ट ने घेर लिया था। तब उन्होंने भगवान कृष्ण से रोग मुक्त करने की प्रार्थना की थी। यह प्रार्थना मान ली गई थी। उनका रोग समाप्त हो गया था। इसीलिए आज भी उसी विधि से श्रीकृष्ण को याद किया। किन्तु कोई आराम नहीं आया।

इसी रात उन्हें स्वप्न आया। इसमें भगवान कृष्ण ने विद्वान भट्टतिरि से आदेशात्मक तरीके से कहा–"आज तुमने मेरे एक भक्त का दिल दुखाया है, यह अच्छा नहीं किया। पहले उसकी कविता को ध्यान से पढ़ो। जरूरी संशोधन करो। तभी तुम्हारा यह रोग ठीक करूंगा।"

प्रातः होते ही महाकवि व महाविद्वान भट्टतिरि स्वयं ही नंपूतिरि के घर पहुंचे। अपने व्यवहार पर अफसोस जतलाया। क्षमा मांगी। कविता को लिया। इसे पढ़ा। कविता में कोई कमी न थी। अतः इसकी तारीफ की। इससे नंपूतिरि का हृदय गद्गद् हो उठा। भट्टतिरि का मन भी काफी हल्का हो गया। और...तभी...देखते ही देखते वह पूर्ण नीरोग हो गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अतिथि ने ही लड़की का हाथ मांग लिया

"मैं यहां आया। आपने मेरा स्वागत किया। मुझे भरपेट शुद्ध भोजन मिला। रात्रि में सोने को बिछौना दिया। मैं आपका आभारी हूं।" मुनि अत्रि ने स्नेहपूर्वक कहा।

"इतना तो हम किसी भी अतिथि के लिए सहर्ष कर देते हैं। आप ब्रह्मचारी हैं। विद्वान हैं। आपके लिए यह सब कर, हमें विशेष सुख मिला है।" गृह स्वामी ने कहा।

"यदि आप उचित समझें और मेरी बात आपको जंचे तो अपनी विवाह योग्य कन्या मुझे दे दें। मैं इसे पत्नी रूप में सहर्ष स्वीकर करूंगा।"

अनुसूइया के माता-पिता ने इस प्रस्ताव के विषय में तो सोचा भी न था। फिर भी उन्होंने मुनि से विस्तार में जानकारी प्राप्त की। जो कुछ भी उसने बताया उसे सत्य मानकर, उसे अपनी बेटी देने की स्वीकृति दे दी।

अग्नि को साक्षी मानकर, बेटी का विवाह सम्पन्न कर, उन्हें कुछ धन-धान्य, वस्त्रादि देकर चित्रकूट के लिए विदा कर दिया।

कभी अनुसूइया के माता-पिता को जवान हुई बेटी की बहुत चिन्ता थी। संजोग जब खुले तो जरा भी देर न लगी। जो होना हो वह होकर रहता है।

मुनि अत्रि को आश्रम से सुदूर जाते समय यदि उस गांव में रात न पड़ती, यदि वह उस घर में न रुकते, उन्हें भला परिवार मान अनुसूइया का हाथ न मांगते तो उनके घर में दत्तात्रेय जैसी अति योग्य सन्तान न होती, जिसका स्वयं भगवान ने भी लोहा माना।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

केवल संस्कृत में ही संवाद करता था श्रीराम परिवार

एक भक्त हुए हैं पंडित श्रीराम!...पुराने समय की बात है, राजाओं-महाराजाओं के समय की। पंडितजी के परिवार का हर सदस्य आपसी वार्तालाप में केवल और केवल संस्कृत का प्रयोग करते थे। हां, दूसरों के लिए वह सम्पर्क में उन्हीं की बोली बोला करते। यह पंडितजी अपने परिवार के साथ एक बार गंगास्नान को गए। वहीं एक मंदिर में ठहरे। इस मंदिर का प्रबन्ध राजा की ओर से होता था। राजपुरोहित इस मंदिर की सारी व्यवस्था करते थे।

जब राजपुरोहित ने देखा कि परिवार का हर छोटा-बड़ा सदस्य आपस में संस्कृत बोल रहे हैं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। भारत में कभी गांव से लेकर नगरों तक हर कोई संस्कृत ही बोलता था। मगर आज भी इस परम्परा का पालन करने वाला यह पंडित परिवार सचमुच महान है। वह बहुत प्रभावित हुए।

राजपुरोहित ने यह बात राजा साहब को बताई। उनसे रहा न गया। स्वयं उठे और इस परिवार के दर्शन करने मंदिर तक आ पहुंचे। उनसे अनुरोध किया। सबको राजमहल ले गए। उनकी रानी ने तथा अन्य महल वालों ने पंडित श्रीराम के चरण पखारे। बहुत सम्मान दिया। सेवा की।

जब पंडित श्रीराम परिवार सहित जाने लगे तो राजपरिवार ने उनकी सेवा में कुछ धन भेंट किया। इसे देखकर पंडितजी ने कहा-"राजन्! इस बोझ को हम नहीं उठा सकते। हमारी जरूरत तो एक सेर प्रतिदिन का आटा है। इतने से सबका गुजारा हो जाता है। यह धन हमारे किसी काम का नहीं।"

बहुत कहने-सुनने के बाद राजा ने तरकीब निकाली। बोले-"यह धन तो मैं दे चुका हूं इसे वापिस कैसे लूं।...नहीं ले सकता।"

"ठीक है। मैंने यह धन स्वीकार किया। अब मैं इसे आपको इस विनय के साथ लौटा रहा हूं कि इसे राजपुरोहित को ही दे दें, अपने पास न रखें।"

राजा को मानना पड़ा।

पं॰ श्रीराम को भी सन्तोष हो गया धन को लौटाकर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देव-पत्नियों ने शुरू किया था करवाचौथ

देवताओं तथा दैत्यों में घोर संग्राम हुआ। किसी ने कोई कसर न उठा रखी। मरने-मारने पर सभी उतारू थे। खून की नदियां बहने लगीं। लाशों के ढेर लगने लगे। किन्तु जीत-हार कोई आसान न थी। दिनोंदिन यह युद्ध और भी गम्भीर रूप धारण करता गया।

अब युद्ध में कुछ ऐसा मोड़ आने लगा कि दैत्यों का पलड़ा भारी हो गया। देवताओं को अपनी हार की आशंका सताने लगी। परास्त हुए तो कहीं के न रहेंगे। रणभूमि में अपने उखड़ रहे पांव देखकर उन्होंने ब्रह्मा से अनुनय-विनय की। सहायता की प्रार्थना की।

ब्रह्माजी ने प्रार्थना सुनी। कुछ विचार किया। फिर देवताओं से कहा-"इस समय दैत्यों को परास्त करना आसान नहीं तुम लोगों के लिए। हां, यदि सभी देव-पत्नियां अपने-अपने स्थानों पर रहकर प्रार्थना करें साथ ही उपवास भी, अपने पतियों की विजय मांगें, तभी तुम्हारी जीत सम्भव होगी।"

यह बात देवताओं की पत्नियों तक पहुंची। उन्होंने ब्रह्माजी के निर्देशों को मान व्रत रखे। विजय की कामना की। यह अवसर था कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी का। इधर व्रत-पूजा चलते रहे, उधर युद्ध जारी रहा। रात्रि को चन्द्रमा निकलने से पूर्व ही देवता जीत गए। दैत्यों के दांत खट्टे हुए। जान बचाने के लिए इधर-उधर छिपते रहे।

देवता प्रसन्न हो उठे। सूचना देव-पत्नियों तक भी पहुंची। उन्होंने चन्द्रमा के उदय होने तक प्रतीक्षा की। इसके पश्चात ही अपना व्रत खोला। चन्द्रमा की स्तुति की। अर्घ्य दिया। धन्यवाद किया।

अब लोग मानते हैं कि वह व्रत लाभकारी था। अत: इसी दिन हर वर्ष व्रत रखती हैं महिलाएं। वे अपने-अपने पति के स्वास्थ्य व दीर्घ आयु की प्रार्थना करती हैं इस दिन।...और बाद में...इसी व्रत का नाम पड़ गया करवाचौथ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्याकरणकार पाणिनि थे कभी मन्दबुद्धि बालक

विश्व के सर्वोच्च विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में व्याकरण सम्मिलित है। इसे पाणिनि की बड़ी बहुमूल्य कृति माना जाता है।

जब 'पाणिनि व्याकरण' की रचना करने वाला पाणिनि छोटा बालक था तो कुछ पढ़ नहीं पाता। लिख नहीं पाता।

एक दिन एक ज्योतिषी को हस्तरेखा दिखाई। उसके अनुसार विद्या की तो रेखा ही नहीं थी। उसने कहा—"अच्छा होगा यदि तुम विद्यार्जन का विचार ही त्याग दो।"

बालक उठा। एकांत में चला गया। कभी अपना हाथ देखता। रेखाओं पर नजर टिकाता। कभी अपने माथे पर हाथ फेरता। पसीना-पसीना हो जाता। कई घन्टे वह वहीं बैठा रहा। पत्थर-सा बनकर पत्थर पर बैठ गया।

अचानक बालक के मन में विचार कौंधा। हो सकता है रेखा होती भी, और वह विद्या पाने में रुचि न लेता। तब क्या होता? तो कैसे पा सकता विद्या।... बालक ने परिश्रम करने का निर्णय कर लिया। यह मजबूत निश्चय था। एक-एक शब्द पर ध्यान देगा। मन लगाकर पढ़ेगा। भले ही वह जड़मति है पर सुजान बनकर दिखाएगा। हर शब्द की गहराई में उतर जाएगा। शब्दों की उत्पत्ति के विषय में सोचेगा।...फिर भला कैसे नहीं आती विद्या। भला कैसे नहीं पढ़ पाता व्याकरण।

बालक ने कठिन परिश्रम के साथ निष्ठा भी रखी। बालक पाणिनि ने पक्की धारणा बना ली। इसी पर चलता रहा...और एक दिन वह मन्द-बुद्धि बालक विश्व का चोटी का व्याकरणकार बन गया।...और उसकी लिखी व्याकरण आज हर विश्वविद्यालय की शान है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

"मैं देह के होते हुए भी विदेही हूं क्योंकि मुझे अगले पल का भरोसा नहीं"–जनक

"मन्त्रीजी! आपका प्रश्न अच्छा है। आपने पूछा है कि मैं देहधारी होते हुए भी विदेही क्यों कहा जाता हूं?...क्यों? तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देकर तुम्हें शांत करूंगा, मगर अब नहीं...फिर कभी।" महाराज जनक ने अपने मन्त्री के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

कुछ दिन बीत गए।...एक दिन राजा जनक ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया–राज्य के अमुक मन्त्री को आज शाम चार बजे, नगर के चौराहे में सूली पर लटका दिया जाएगा। इस घोषणा को मन्त्री ने भी सुना। साथ ही उन्हें राजा जनक का निमन्त्रण भी मिल गया। निमन्त्रण के अनुसार वह राजमहल में प्रातः दस बजे भोजन के लिए पहुंच गया। कैसे न जाता? राजा का निमन्त्रण था, जो आदेश से कम न था।

अनेक खट्टे, मीठे, नमकीन पदार्थ तैयार किए गए थे। मगर जहां नमक चाहिए था, वह नहीं डाला गया। भोजन करने के पश्चात राजा ने पूछ लिया– "मंत्रीजी! किसी पदार्थ में नमक की कमी तो नहीं थी?"

'राजन! मुझे कुछ पता ही नहीं लगा कि मैंने क्या खाया!...खट्टे, मीठे, नमकीन या फीके पदार्थों में कोई अंतर ही नहीं समझ पाया मैं।....मेरे तो दिल और दिमाग पर मौत का भय जो था। कुछ ही घन्टों बाद मरने वाला भला क्या महसूस करेगा स्वाद को।"

"ठीक कहते हो मंत्रीजी! कुछ घन्टों बाद सूली पर लटकाए जाने का भय ही तुम्हें देह वाला होते हुए विदेही बना बैठा। मगर मुझे देखिए...जिसे अगले पल का भी कोई भरोसा नहीं। उसे यदि देहधारी होते हुए लोग विदेही कहें तो वे ठीक ही तो कहते हैं।...यही तो आपका प्रश्न था...मिल गया न जवाब।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

देव, मनुष्य और असुर क्रमशः दमन, दान व दया का पाठ पढ़ा करें

देव, मनुष्य और असुर–ये तीन संतानें हैं प्रजापति की। तीनों ने पृथ्वी पर आने व अपने-अपने कार्यों को संभालने से पूर्व प्रजापति से आज्ञा लेनी चाही। प्रणाम किया। आशीर्वाद मांगा। फिर उन्होंने अपने-अपने लिए विशेष उपदेश की प्रार्थना करनी चाही।

सबसे पहले देव आगे गया। प्रजापति उसके उद्देश्य को समझकर बोले–"द" और चुप हो गए। फिर प्रश्न किया–"द" से क्या समझे?

कुछ देर विचार कर देव ने कहा–"द कहने से आपका अभिप्राय है–'दाम्यत' अथवा दमन। हमें इन्द्रियों का दमन करना होगा। यह आपका उपदेश है।"

जब मनुष्य प्रजापति के पास गया तो उन्होंने उसे भी केवल–'द' कहा और चुप हो गए। थोड़ा रुककर पूछा–"क्या समझे?"

"जी। समझ गया 'द' से आपका अभिप्राय है 'दत्त' अथवा दान।"

अब बारी थी असुरों की। जब असुर दोनों हाथ जोड़कर प्रजापति के सम्मुख खड़ा हुआ तो उन्होंने उसे भी केवल 'द' कहा और फिर इस 'द' का अभिप्राय पूछा। असुर ने थोड़ा विचार करने के बाद कहा–"द से मतलब है–दयध्वम् अथवा 'दया'।"

तब प्रजापति ने कहा–"इन गुणों को अपने-अपने जीवन में धारण करने से आंप अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। प्रकृति में भी जब बिजली गर्जती है तो द-द-द की ध्वनि निकलती है। प्रकृति भी दमन, दान व दया का पाठ पढ़ाती है। तीनों अपने-अपने 'द' को याद रखना।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सूर्यदेव की पत्नी संज्ञा उनके अत्यधिक तेजस्वी शरीर को देखकर मायके लौट गई

भगवान सूर्य की पत्नी हैं संज्ञा।

सूर्य की चमक-दमक, तेज इतना था कि संज्ञा उसे खुली आंखों से देखने में असमर्थ थी। वह सोलह कलाओं के साथ प्रकाशित हुआ करते। पहले-पहल वह रक्त वर्ण मुखारविन्द तमतमाते हुए अपने घर जा पहुंचे। इस तेजस्वी शरीर को देखकर संज्ञा ने अपनी आंखें बंद कर लीं। इसे देखकर सूर्य भगवान कुछ नाराज होने लगे। कुपित होकर पूछ लिया–"संज्ञा! क्या तुम मेरे तेजस्वी रूप को पसंद नहीं करतीं? खोलो आंखें। देखो मुझे।"

संज्ञा इसके लिए हिम्मत नहीं जुटा पाई बल्कि और भी सहम गई। उस सूर्य-पत्नी ने अपने आपको बादलों में छिपा लिया, जैसे घूंघट धारण कर लिया हो। इसने सूर्यदेव को और भी क्रोधित कर दिया। वह आग-बबूला होने लगे। यह देखकर संज्ञा बेहद कांपने लगी। पति को रुष्ट पाकर उसे अपनी रक्षा करने की चिंता हो उठी। वह बादलों के पीछे-पीछे से, चुपचाप खिसक गई। जा पहुंची पितृगृह जो कुरू प्रदेश में था। वहां जाकर वह निरंतर तप लीन हो गई। दुनिया में क्या होता है, इसकी चिंता छोड़ दी।

उधर सूर्य भगवान ने अपना रूप-रंग बदलकर एक योगी का रूप धारण कर लिया। इस बदले हुए वेष में वह अपनी तपस्विनी पत्नी के पास जा पहुंचे। संज्ञा की तंद्रा टूटी। उसने योगी को प्रणाम किया। विनयपूर्वक बोली–"मेरे पति और अधिक तपस्वी हों। उनका तेज जरूर बढ़े मगर उनका स्वभाव पूर्णतः सरल हो। ऐसा कि मैं उन्हें लगातार देख पाऊं। तमतमाते चेहरे से मैं डर जाती हूं।"

अपनी पत्नी संज्ञा के मुंह से ये शब्द सुनकर सूर्य भगवान द्रवित हो गए। उन्होंने निर्णय कर लिया कि वह सोलह कलाओं में से एक के साथ ही प्रकाशित होंगे। जैसे ही उन्होंने अपना व्यवहार बदला, संज्ञा उनके पास चली आई। उन्हें सौम्य तथा अपने अनुकूल पाकर वह गद्‌गद्‌ हो उठी। उसने सोचा–वैभव अवश्य चाहिए। साथ ही स्नेह व सौम्यता भी जरूरी है। सूर्यदेव से संज्ञा के मन के भाव छिपे नहीं रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शेर के पूछने पर महर्षि ने तर्क का सहारा लेकर हिरन की जान बचा दी

भागता हुआ शेर आया। आकर महर्षि उतथ्य के सामने खड़ा हो गया। पूछ लिया—"क्या आपने हिरन को इस ओर आते देखा है?"

महर्षि ने कुछ ही देर पूर्व एक हिरन को अपनी कुटिया में छिपते देखा था। वह बहुत भयभीय था। हवन कुण्ड के सामने बैठे महर्षि धर्मसंकट में फंस गए। यदि कहते हैं कि हिरन उनकी कुटिया में छिपा है तो यह शेर उसे मार देगा। यदि हिरन को देखने से इनकार करते हैं तो यह झूठ होगा। पाप होगा। वह असत्य बोलने से परहेज करते थे। सत्य बोलना कठिन हो रहा था।

तभी शेर ने दोबारा पूछा—"महर्षि आपने मेरी बात का जवाब नहीं दिया। वह हिरन किस दिशा को गया, यही दिखा दें।...अभारी रहूंगा।"

"क्या कह दिया तुमने। कैसे दिखाऊं? तुम तो जानते ही हो, देखना आंखों का काम है, बोलना मुंह का काम है। सच्चाई यह है कि आंखें बोल नहीं सकतीं, मुंह देख नहीं सकता। ऐ शेर महोदय! तू बोलने वाली इन्द्रिय से पूछ रहा है कि क्या उसने तेरा शिकार देखा है। जो देखने में सक्षम नहीं, वह इसका क्या जवाब देगा?...और जिसने देखा है, वह बोलने में असमर्थ है। हालात ऐसे बन गए हैं कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने में ही सक्षम नहीं।"

जब शेर को हिरन के जाने के स्थान या दिशा का पता नहीं चला तो वह वापिस लौट गया, किसी अन्य शिकार की तलाश में। महर्षि ने यह सब कहते हुए तर्कशास्त्र की नींव रख डाली। यह निकली इस घटना से नई बात।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अष्टावक्र ने विद्वानों को केवल चमारों का जमघट बताया

अष्टावक्र एक विद्वान ब्राह्मण थे, मगर उनके नाम के अनुरूप उनका शरीर स्थान-स्थान से मुड़ा हुआ था, जिसमें आठ वक्र थे। वह एक दिन राजा जनक के दरबार में मिथिलापुरी पहुंचे। जैसे ही उन्होंने दरबार हाल में प्रवेश किया, दरबार में बैठे विद्वान हंस पड़े। उनके कुरूप तथा टेढ़े-मेढ़े शरीर पर उन्हें हंसी आई तो उतने ही वेग के साथ वह भी हंसने लगे।

महाराज जनक अपने सिंहासन से उठे। ब्राह्मण कुमार के पास आकर उन्हें प्रणाम किया। फिर पूछ लिया–"आप क्यों हंसे, क्या यह बतलाने की कृपा करेंगे?"

"पहले आप ही बतला दें कि ये दरबारी मुझे देखकर क्यों हंसे?" अष्टावक्र ने पूछ लिया।

इससे पहले कि महाराज जनक उत्तर देते, दरबार में बैठे विद्वानों में से एक ने उठकर कह दिया–"हमारे हंसने का कारण आपका यह भद्दा व तुड़ा-मुड़ा शरीर है। कितना व्यंग्यात्मक शरीर है आपका।"

अब अष्टावक्र ने अपने हंसने का कारण बताते हुए कहा–"मैं तो आया था आपके दरबार के विद्वानों को मिलने...मगर यहां आकर देखा ये तो केवल चमारों का जमघट है, विद्वान एक भी नहीं।"

इतना सुनते ही राजा जनक ने कहा–"आपको इन विद्वानों का यों अपमान नहीं करना चाहिए।...ब्राह्मण कुमार! यह आपने अच्छा नहीं किया।"

"आप शायद ठीक हों महाराज! मगर...जो लोग हड्डियों और चमड़े की परीक्षा करते हैं उन्हें चमार न कहें तो और क्या कहें।...सामने वाला कितना विद्वान है इसको तो देखने की कोशिश ही नहीं की इन्होंने।"

यह सुनते ही सब विद्वानों ने अष्टावक्र ब्राह्मण को प्रणाम कर अपनी भूल को सुधारा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

स्वयं लक्ष्मी व नारायण बालक लक्ष्मण की सहायता के लिए व्याध दम्पति बने

लक्ष्मण के पिता की मृत्यु हुई तब वह बालक ही था। माता ने बालक को यादव प्रकाश आचार्य के पास शिक्षा के लिए भेजा। इस गुरु की अद्वैत शास्त्र में पूरी निष्ठा थी। यह शिक्षा लक्ष्मण को पसंद नहीं थी। उन दोनों की किसी न किसी बिन्दु पर अकसर बहस हो जाती। इसे गुरु पसंद नहीं करते। अत: यह उन्हें बुरा लगने लगा। किन्तु शिष्य अपने गुरु का पूरा आदर किया करता।

एक बार कांची की राजकुमारी को ब्रह्मपिशाच का प्रकोप हो गया। राजा ने यादव प्रकाश आचार्य से इलाज करवाया। उनका तंत्र-मंत्र विफल रहा। स्वयं ब्रह्मपिशाच ने कहा कि यदि लक्ष्मण कन्या के सिर पर हाथ रख दे तो वह इसे मुक्त कर देगा। वैसा किया गया। इससे राजकुमारी पूरी तरह ठीक हो गई। राजा ने गुरु व शिष्य दोनों को सम्मान देकर भेजा। अब गुरु अपने शिष्य को रास्ते की अड़चन मानने लगा। उसे रास्ते से हटाने के इरादे से काशी जाने का षड्यन्त्र रचा। एक भयानक जंगल के मार्ग से चले जा रहे थे कि लक्ष्मण को अपने गुरु की नीयत का पता चल गया। उसने गुरु को चकमा दिया और भागकर गहरे वन में छिप गया। गुरु के षड्यन्त्र से बच गया। थक-हारकर एक वृक्ष के नीचे जा लेटा। तभी एक शिकारी दम्पति ने पास आकर पूछा कि उसे कहां जाना है। बालक ने बताया कि उसे कांची जाना है। शिकारी दम्पति ने बताया कि कांची तो बहुत दूर है। सबने भूखे-प्यासे एक साथ रात काटी। व्याध दम्पति को प्यास लगी। बालक लक्ष्मण ने बर्तन न होने के कारण अपनी अंजलि में पानी भर-भरकर उन्हें पिलाया। जब वह अंतिम बार कुएं से पानी लेने गया तो पीछे से शिकारी खिसक गए। किधर गए पता नहीं चला।

बालक लक्ष्मण ने किसी से कांची का रास्ता पूछा। कितना दूर है यह भी जानना चाहा। उसे पता चला कि वह तो कांची के बाहर पहुंच चुका है। जब घर पहुंचकर लक्ष्मण ने पिछली रात की घटना की जानकारी दी तो मां व मामा ने कहा–"बेटा! जिन्हें तुम शिकारी मान रहे हो वे तो स्वयं ही लक्ष्मी तथा नारायण थे। उन्होंने ही तुम्हें रातोंरात इस गांव से बाहर पहुंचा दिया। तुम्हें पता ही नहीं चला।" उस पर तो हो चुकी थी प्रभु कृपा, मगर वह इससे अनभिज्ञ था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ईर्ष्यालु भट्ट ने संत तुकाराम की पांडुलिपियां चुराकर फेंक दीं नदी में

सन्त तुकाराम बहुत ही शांत प्रकृति के मुनि थे। उन्होंने अनेक बहियां तैयार कर रखी थीं, जिनमें पद, ओवियों आदि लिखे थे। जो पुस्तकों के लिए पांडुलिपियां बन सकती थीं। किन्तु रामेश्वर भट्ट नामक ब्राह्मण उनसे बहुत ईर्ष्या किया करता तथा हर समय उन्हें नीचा दिखाने के काम करता। एक बार मौका पाकर इस ब्राह्मण ने अपने अहंकार का प्रदर्शन करते हुए सन्त तुकाराम की पूरी बहियों को उठाकर इन्द्रायणी नदी में जा फेंका। ऐसा कर वह बहुत खुश होकर यह बात सबको बताने लगा।

सन्त तुकाराम को अपनी बहियों के नदी में डुबो दिये जाने पर बहुत ही दुख हुआ था। उन्होंने खाना-पीना, नहाना, शौच जाना सब त्याग दिया। एक शिला पर जा बैठे। इस बड़ी क्षति का अफसोस मनाते लेटे रहे। तेरह दिन इसी प्रकार बिता दिए।

उधर खुशी में चूर हो रहा रामेश्वर भट्ट पूना के लिए चल पड़ा। साथ में सेवक भी थे। अचानक एक झरने पर नजर पड़ी। भट्ट वहीं रुककर स्नान करने लगा। उसे देखकर एक दरगाह के औलिया ने उसे रोका। झरने में स्नान न करने को कहा किन्तु वह नहीं माना। जैसे ही स्नान किया तो शरीर में काफी जलन होने लगी। जब सेवक ने रामेश्वर भट्ट को पीड़ा से चीखते देखा तो उसके बदन पर गीला कपड़ा लपेट दिया। इसी प्रकार वह उसे ज्ञानेश्वर महाराज के पास ले गया। उनके सम्पर्क में आने से कुछ राहत महसूस हुई।

सन्त ज्ञानेश्वर ने कहा–"सन्त तुकाराम को तंग करने का यह परिणाम है। जब तक तुम उनके पास जाकर उनसे क्षमा नहीं मांगते, तुम्हारा दुख दूर नहीं हो सकता।" यह सुनकर ब्राह्मण रामेश्वर भट्ट सीधे सन्त तुकाराम के पास गया। उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी। साथ ही पाया कि सभी बही-खाते, लेखन वाली बहियां सन्त तुकाराम के सम्मुख सुरक्षित पड़ी थीं। उसे पता चला कि स्वयं भगवान पाण्डुरंग ने इन बहियों को नदी से बाहर निकाला था। फिर बालक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

रूप धारण कर इन्हें सन्त तुकाराम तक पहुंचा, अपने कर्त्तव्य व महानता का परिचय दिया। इसे सुनकर रामेश्वर भट्ट बहुत लज्जित हुआ तथा भविष्य में ऐसी कोई गलती न करने का प्रण किया।

सन्त तुकाराम ने भी ब्राह्मण पर दया कर, महानता का परिचय देते हुए उसे पूरी तरह से क्षमा कर निश्चिन्त रहने का आशीर्वाद दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

सामाजिक कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले महात्मा सुकर्मा की हुई जय-जयकार

मन में मोक्ष की प्रबल इच्छा थी महर्षि पिप्पल के। वह ईश्वर पा लेना चाहते थे। उन्हें यह दुनिया अच्छी न लगती। यहां उन्हें रोग, राग, द्वेष तथा क्लेश देखकर बड़ी परेशानी होती। वह सामाजिक जीवन से विरक्त होते गए।

सुकर्मा भी प्रभु भक्त थे। उनके दर्शन व आशीर्वाद पाना चाहते थे। जीवन-मरण से छूटना चाहते थे। बहुत बार इसी बारे सोचते। ईश्वर-ध्यान में गुमसुम बने रहते।

एक दिन पिप्पल ने गांव, नगर छोड़कर जंगलों में जाने तथा वहां तप करने का निश्चय कर लिया। चल पड़े वनों को। वनों में जाकर वहीं रहने लगे। योगाभ्यास तथा ध्यान में समय बिताने लगे। एक प्रात: वह अपने स्थान पर अशांत से बैठे प्रभु नाम का सिमरण कर रहे थे। मन था कि लग नहीं रहा था। उनकी नजर पड़ी सामने से सारस का जोड़ा आता दिखाई दिया।

मादा सारस का प्रश्न था–"बताओ तो, महर्षि पिप्पल साधना में लीन रहते हैं। महात्मा सुकर्मा भी। आपकी नजरों में दोनों में से किसकी तपस्या श्रेष्ठ है?"

"तो तुम नहीं जानती?" नर सारस ने पूछा।

"नहीं तो।" वह बोली।

"बड़ी साफ बात है। महात्मा सुकर्मा की तपस्या हर प्रकार से श्रेष्ठ है। वह विरक्त होकर भी संसार में रह रहे हैं। ईश्वर स्मरण करने में कभी पीछे नहीं रहे। भगवान भक्ति को अवश्य पसंद करते हैं मगर जो अपने कर्त्तव्यों से मुंह नहीं मोड़ता, उनका सही-सही निर्वाह करता है उसी पर अधिक प्रसन्न होते हैं भगवान।"

सामाजिक कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले महात्मा सुकर्मा की जय-जयकार सुनाई देने लगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

जब भक्षक सांप ने मेंढक पर फन की छाया दे रक्षक का काम किया

बद्रीनाथ की यात्रा पर थे आद्य शंकराचार्य। पैदल व कठिन मार्ग से चलते हुए वह थक गए। एक तालाब था रास्ते में। वह किसी तरह उस तालाब तक जा पहुंचे। इसके किनारे बैठकर सुस्ताने लगे। उनके शिष्य भी आसपास रहे। जैसे-जैसे सूर्य सीधे सिर पर आया, ग्रीष्म ऋतु की यह दोपहर काफी गरम हो गई। मेंढक, जो उछल-कूद कर रहे थे, गर्मी से परेशान होने लगे। पानी के बाहर काफी तपिश थी। पानी के गर्म हो जाने से एक छोटा-सा मेंढक टर्राने लगा। उससे धूप, गर्मी, बढ़ता तापमान बरदाश्त नहीं हो रहा था। उसका चिल्लाना बढ़ता गया।

आदिगुरु शंकराचार्य ने यह देखा, व ऐसा ही अनुभव भी किया। तभी एक बड़ा सांप आया। पानी पर स्थिर खड़े मगर टर्रा रहे मेंढक के ऊपर इस सांप ने फन फैलाकर, इसे छाया देना शुरू कर दी। ऐसा शायद ही कभी कहीं हुआ हो। इस बात ने शंकराचार्य को चकित कर दिया। सांप के फन की छाया से मेंढक का टर्राना घटता गया। उसे राहत का अनुभव होने लगा। जगद्गुरु शंकराचार्य के मन में भांति-भांति के प्रश्न उठने लगे। सांप को मेंढक को खाना अच्छा लगता है। मेंढक उसकी खुराक है। भक्षक सांप ने आज रक्षक की भूमिका निभानी शुरू कर दी। शंकराचार्य अधिकाधिक विस्मित होते रहे।

जब वह बद्रीनाथ के आश्रम में पहुंचे और उन्होंने वहां स्वामी गोविन्द भगवत्पाद से तालाब की इस घटना का जिक्र किया तो स्वामी ने कहा—"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। इसी स्थान पर कभी श्रृंगी ऋषि का पावन आश्रम रहा था। इस आश्रम में पशु-पक्षियों या किसी भी प्रकार के जीवों में बड़ा प्रेम हुआ करता। सबके सब प्राणी मित्रवत रहा करते व हर दूसरे की सहायता को तत्पर रहते। यह घटना जो आज आपने देखी, यह उसी की एक छाया है, पुनरावृत्ति मात्र है। यह इस पावन स्थान का ही प्रभाव है।"

यह सुनकर आदिगुरु शंकराचार्य को अच्छा लगा। उन्होंने हर प्राणी तथा हर व्यक्ति में एकात्मकता का भाव जगाने के लिए कालान्तर में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, सब जगह तीर्थ निर्मित किए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गौतम मुनि के नाम पर गोदावरी नदी कहलाई गौमती भी

गौतम मुनि अपने आश्रम में बैठे थे। उनकी नजर पड़ी। देखा, कुछ साधु-सन्त उनकी ओर आ रहे हैं। इन ऋषियों-मुनियों का गौतम मुनि ने स्वागत किया। आने का कारण पूछा। उन्होंने अपनी दुर्दशा बताते हुए कहा कि वे बुरी तरह से दुर्भिक्ष पीड़ित हैं। उन्हें आश्रम में बड़े आदर के साथ रख, उनकी बड़े यत्न के साथ देखभाल की।

कुछ समय बाद उन ऋषि-मुनियों ने लौट जाने की आज्ञा मांगी। गौतम मुनि नहीं माने। वह उन्हें और अधिक समय तक आश्रम में रखना चाहते थे।

एक दिन की बात। गौतम मुनि आश्रम से बाहर थे। संन्यासियों ने अपने योग बल से एक गाय बनाई। उसे आश्रम में बांधकर स्वयं चुपके से चले गए। खिसक गए समझो।

गौतम मुनि ने लौटकर गाय देखी। वह चकितं रह गए। कौन है? कैसी है? कहां से आई? उन्होंने जल को अभिमन्त्रित कर गाय पर छींटे मार दिए। गाय गिरी और मर गई।

अब गौतम मुनि से कुछ छिपा न रहा। वह सब जान गए। किन्तु अब अनर्थ तो हो ही चुका था। उन्होंने पश्चाताप हेतु खूब तप किया था। भगवान शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने वहीं गंगा का प्रवाह बुलाकर गाय को जीवित कर दिया। गौतम मुनि भी पापमुक्त हो गए। यह जो जल का प्रवाह हुआ इसने नदी रूप धारण कर लिया। इस नदी का नाम पड़ा गोदावरी। अभी तक बहती आ रही है यह नदी गोदावरी।

क्योंकि यह गौतम मुनि के प्रयत्नों से त्र्यंबकेश्वर के समीप ब्रह्मगिरि से निकलती है तथा बंगाल की खाड़ियों में जाकर मिल जाती है गोदावरी का नाम गौमती भी पड़ गया, गौतम मुनि के ही नाम पर।

'इतिहास-पुराण का अनुशीलन' पुस्तक का है यह प्रसंग।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अपने ठिकाने को न छोड़ना भी वरदान हो जाता है कभी

देवराज इन्द्र ने पूछा–"मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं?"

मैना ने आंखें झुकाकर कहा–"कुछ भी तो नहीं।" उसने आगे कहा–"मुझे लगता है आप कुछ कर ही नहीं सकते। मैं जहां बैठी हूं यह पेड़ कभी हरा-भरा था। मेरी मां ने इस पर घोंसला बनाया। अण्डे दिए। मैं यहीं पैदा हुई। आज यह पेड़ सूखा पड़ा है। कैसे? यह मुझे नहीं मालूम। किन्तु..."

"किन्तु क्या?" इन्द्रदेव ने जानना चाहा।

"पर मैं इस सूखे ठूंठ को त्याग नहीं सकती। मैं अन्यत्र किसी अन्य पेड़ पर जा नहीं सकती। पलायन करूंगी भी नहीं। यही मेरा घर है। यही मेरा ठिकाना है।" मैना ने डबडबाती आंखों से कहा।

"ठीक है, बोलो। तुम क्या चाहती हो। मैं जरा कोशिश करके तो देखूं।"

मैना ने देवराज इन्द्र को बिना पहचाने कहा–"ऐ राहगीर! या तो मुझे ही मौत दे दो, या इस वृक्ष को फिर से जीवित कर दो। हो जाए यह हरा-भरा।"

"ठीक है।" कहते-कहते देवराज ने तथास्तु कहा और अन्तर्धान हो गए।

यह देखकर मैना चकित हो गई कि वह अब हरे-भरे वृक्ष की छांवदार टहनी पर बैठी थी। बिना उठे, बिना उड़े, वह घनी छांव में बैठी थी...आश्चर्य। वृक्ष फूल-पत्तों से लहलहा रहा था। उसके चारों ओर उसका दोस्त...उसका ठिकाना...उसका घर...उसका पुराना वृक्ष अब हरा-भरा हो चुका था।

कौन था वह राहगीर। मैना नहीं जानती थी इसे।...किन्तु उसका ठूंठ हो चुके, सूख चुके वृक्ष से जुड़ा रहना आज उसके लिए वरदान बन गया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

विरोध करने वालों ने ही स्वागत किया उस्ताद रज़ाक हुसैन का

अपनी बात समझाने और मनवाने की महारत हासिल थी महाराष्ट्र के संत नरहरिजी को। उनकी इस विशेषता का एक उदाहरण स्वतन्त्रता से दो वर्ष पूर्व, सन् 1945 में देखने को मिला। उन्हीं के प्रयत्नों से डाकोर के श्री रणछोड़जी मंदिर में हरि-कीर्तन हुआ। इसमें हज़ारों लोगों ने भाग लिया। बहुत रौनक रही। लोगों के मन में श्रद्धा इतनी थी कि अपने कामकाज बन्द कर लोग इस हरि-कीर्तन में शामिल हुए थे।

संत नरहरि ने कीर्तन के अंत में घोषणा की–"आप लोग आधा घन्टा के लिए अंतराल करें। दोबारा यहीं एकत्रित हो जाएं। आपको उस्ताद रज़ाक हुसैन का संगीत सुनने का अवसर मिलेगा। बहुत आनन्द आएगा।"

इस घोषणा के होते ही कुछ कट्टरपंथी पंडित तथा अन्य लोग नाराज होने लगे। कानाफूसी शुरू हो गई। इस संगीत के विरोध में आवाजें उठीं। हमारे देवालय में एक मुसलमान, एक विधर्मी प्रवेश कर, मंच पर आसीन होगा, हमें स्वीकार नहीं।

बात श्री नरहरि महाराज तक पहुंची। उन्होंने विरोध करने वाले ब्राह्मणों को अपने पास इकट्ठा कर लिया। तब वह एक तबला लेकर आए। पूछा–"यह तबला मुख्यत: दो चीजों से बना है–लकड़ी व चमड़ा।...ठीक। आपका जूता भी चमड़े का बना होता है किन्तु जूते को तो आप मंदिर में नहीं लाते। बाहर उतार देते हैं और तबला अन्दर लाते हैं। कीर्तन में भी इसका प्रयोग करते हैं। क्योंकि इसे पवित्र किए गए चमड़े से बनाते हैं। 'तब' का अर्थ है शुद्ध और 'ला' यानि लाते हैं।

ठीक इसी प्रकार से, बड़े सोच-विचार के बाद हमने उस्ताद रज़ाक हुसैन को मंदिर में आकर संगीत कार्यक्रम देने का निवेदन किया है, वह केवल मुसलमान ही नहीं बल्कि एक सुलझे हुए भले, सहृदय इन्सान हैं। आप उनके भजन सुनें...उनका स्वागत करें।...उन्हें उत्साहित करें।"

विरोध करने वाले पंडित मान गए। उन्होंने ही सबसे पहले उस्ताद का मुख्य द्वार पर स्वागत किया। उनकी खूब प्रशंसा हुई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

चूंकि विष्णु नारद के हृदय में अंगूठे की नाईं विराजमान हैं–इसीलिए नारद सबसे श्रेष्ठ हैं

सबसे बड़ा या सबसे महान अथवा श्रेष्ठ कौन है? यह प्रश्न नारद के मन में उठा। देवर्षि नारद इसका उत्तर ढूंढ़ते रहे किन्तु ढूंढ़ नहीं पाए। सोचा–चलो भगवान से ही इसका तर्कसंगत उत्तर पा लेता हूं। और वह चल पड़े वैकुण्ठ के लिए। वहां पहुंचकर प्रभु से यही प्रश्न दोहरा दिया...उत्तर पाने की प्रार्थना की।

"क्या तुम नहीं जानते?" प्रभु ने भी प्रश्न कर दिया।

"जी नहीं। आप ही कृपा कर, मेरा मार्गदर्शन करें।" देवर्षि नारद ने कहा और दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

प्रभु ने कहना शुरू किया–"सबसे महान तो पृथ्वी है जो इतनी बड़ी है तथा दूर-दूर तक फैली हुई है। इस पर सारी सृष्टि फल-फूल रही है।"

तभी उन्होंने कह दिया–"पृथ्वी नहीं। इससे बड़ा तो सागर है, जिसने पृथ्वी को चारों ओर से घेर रख है।"

अपनी ही बात का संशोधन करते हुए प्रभु ने कह दिया–"नहीं, सागर सबसे महान नहीं हो सकता। क्योंकि इसे तो अगस्त्य मुनि गटागट पी गए थे। अत: वही महान हैं।"

तुरन्त बोले–"देवर्षि! अगस्त्य मुनि सबसे महान नहीं हो सकते...क्योंकि उनका वास तो इतने बड़े आकाश में एक छोटे से जुगनू की भांति सूक्ष्म है। अत: आकाश ही सबसे महान हुआ।"

कहते-कहते स्वयं प्रभु ठिठके। बोले–"नहीं आकाश भी सबसे महान नहीं हो सकता। भगवान विष्णु ने जब वामनावतार धारण किया था तो पूरे आकाश को एक ही पग में नाप लिया था। अत: आकाश नहीं बल्कि भगवान विष्णु ही सबसे महान हुए...है न।"

अभी नारद ने हां में सिर भी नहीं हिलाया था कि प्रभु ने अपनी ही बात काट दी। बोले–"विष्णु भी सबसे महान नहीं हैं क्योंकि...वह तो नारद तुम्हारे हृदय में अंगूठे की नाईं विराजमान रहते हैं। अत: मेरे विचार में सबसे महान तो तुम–देवर्षि नारद–ही हुए।...इसमें न मुझे कोई शंका है, न ही तुम्हें होनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शनि की मूर्ति खरीदने के लिए कोई तैयार न था

राजा सत्यव्रत की राजधानी। यहां एक मूर्तिकार मूर्तियां बनाता और बेचता। शाम तक यदि कोई मूर्ति नहीं बिकती तो राजा ही इसे खरीद लेता। इस प्रकार राजा ने कई बार उसकी न बिकी मूर्तियां खरीद ली थीं। अतः अपने वचन पर खरा उतरते रहे।

आज मूर्तिकार ने शनि देव की मूर्ति बनाई। मूल्य रखा एक लाख। ग्राहक को मूर्ति की विशेषता भी बता देता। कहता–"जो कोई शनि देव की यह मूर्ति खरीदेगा, उसके घर की लक्ष्मी, धर्म, कर्म, यश सब साथ छोड़ देंगे।" यह सुनकर कोई भी ग्राहक राजी न हुआ। शाम हो गई मूर्ति बिकी नहीं। उसे राजा सत्यव्रत की याद आई।

शाम के समय मूर्तिकार अपने पक्के ग्राहक राजा सत्यव्रत के पास पहुंचा। मूर्ति की विशेषता (या अवगुण) भी बता दिया। मूल्य भी एक लाख कह सुनाया। वजीरों ने लाख मना किया। किन्तु राजा सत्यव्रत ने कहा–"नहीं। हम इसे अवश्य खरीदेंगे। मैं अपने वचन से पीछे नहीं हटूंगा। सत्य पर आधारित है मेरा राज्य।" खरीद ली मूर्ति।

आधी रात के समय मां लक्ष्मी ने सोते हुए राजा सत्यव्रत को जगाकर कहा–"राजन! आपने जानते हुए भी शनिदेव की वह मूर्ति खरीद ली...अब मैं यहां नहीं रह सकती।"

"जैसी इच्छा।" राजा ने कहा।

तब बारी-बारी धर्म, कर्म, यश आदि ने भी विदाई मांग ली। राजा ने स्वीकृति दे दी।

इस क्रम में अब सत्य के देवता ने आकर कहा–"राजन्! मैं भी चला। अब मैं यहां नहीं रह सकता।"

अब राजा सत्यव्रत उठ खड़े हुए। सत्य के देवता का हाथ पकड़कर बोले–"नहीं। मैं आपको नहीं जाने दूंगा। मेरा नाम सत्यव्रत है। सत्य की रक्षा करने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

के लिए ही मैंने यह मूर्ति खरीदी थी।...अपने वचन का पालन किया। मूर्तिकार के बता देने पर भी मूर्ति खरीदी ताकि सत्य की रक्षा हो सके।"

सत्य का देवता विवश हो गया। उसे रुकना पड़ा। सत्यवादी व सत्य के रक्षक राजा सत्यव्रत का साथ देना पड़ा।...ठीक उसी वक्त लक्ष्मी, धर्म, यश, कर्म सबके सब एक-एक करके लौट आए। बोले-"जहां सत्य का निवास है, वहां हमारा भी वास है अतः हम यहीं रहेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत कमाल ने बालक दादू के मुंह में पान की पीक डाल ईश्वर-भक्त बना दिया

गैब माहि गुरुदेव मिला, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया, पाया अगम अगाध।।

ये शब्द हैं सन्त दादू के, जो उन्होंने सन्त कबीर के पुत्र सन्त कमाल के साथ दूसरी भेंट में कहे थे। उन्हें ही गुरु धारण किया था। उन्होंने भी तो युवक दादू से प्रसन्न होकर उन्हें हृदय से लगा ज्ञान की ज्योति उनके हृदय में उतार दी और बना दिए सन्त दादू–परमात्मा के प्रिय भक्त।

जिस समय दादू अबोध बालक थे तो यही कमाल सन्त उसे ढूंढते हुए उधर आए। बालक खेल रहा था। पास बुलाया। मुंह खोलने को कहा। जैसे ही इस छोटे बालक ने मुंह खोला, सन्त ने दादू के मुंह में पान की पीक डाल दी और बिना रुके चले गए अपने रास्ते पर। बालक इस घटना का अभिप्राय नहीं समझ पाया। यह भूमिका बन गई थी उनके संस्कार बदलने की। उन्हें विरक्ति की ओर ले जाने की नींव रख गए यह साधु। अब वह हर समय इस दुनिया से विरक्त होने की सोचने लगा। वह आयु में भी बढ़ता गया। विरक्ति की ओर झुकता गया। घर त्यागने की सोचता गया। मगर ऐसा कर न सका।

समय बीतता रहा। जब दादू युवा अवस्था को पा गया तो वही साधु उसे ढूंढते हुए वहां आ पहुंचे। जब दादू ने याद किया तो उसे बचपन की वह घटना भी याद आ गई जब उसे इसी साधु ने बुलाया व मुंह में पीक डाली थी। और उसी दिन से उसका झुकाव ईश्वर की ओर होने लगा था। दादू उन साधु के चरणों से लिपट गया। उन्होंने उसे उठाया। गले से लगाया। परमज्ञान की ज्योति को उसके हृदय में प्रवेश कर दिया। फिर बोले–"बेटा दादू! तुम तो मेरे प्रति श्रद्धा व्यक्त कर रहे हो, किन्तु नहीं जानते कि तुम्हारे प्रभु तुम्हारी कितनी इन्तजार कर रहे हैं। उनकी युग-युग की प्रतीक्षा को खत्म करो। उन्हीं में ध्यान लगाओ, जो तुम्हारा ध्यान किया करते हैं। तुम्हारे जन्म-जन्म के सब बन्धन काटने वाला वही है, जो इसके लिए तैयार बैठा है। यदि देरी है तो तुम्हारी तरफ से, उस तरफ से नहीं।"

यही युवक जगत् प्रसिद्ध दादू सन्त हुए समय आने पर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अभिशापित वारांगना ने मधुर भजन गाकर पूर्व की तस्वीर मिटा डाली

मेरा मन गिरधर छवि पे अटक्यौ।
सजल स्याम घन बिरन लीन है।
फिर चित अनतन भटक्यौ।।

ये पंक्तियां हैं उस भजन की जो एक अभिशापित वारांगना ने प्रथम बार मंदिर में पहुंचकर गाईं। और इसी के साथ उसने अपना नाच-गान का व्यवसाय सदा के लिए त्यागकर अपने को ईश्वर भक्ति में पूरी तरह लगा दिया।

यह परिवर्तन हुआ तो कैसे, यह है मुख्य बात। कृष्णदास सन्त भी थे, कवि भी थे, और उनकी रचनाएं मुख्यतया अष्टछाप पद्धति की थीं। एक बार यह सन्त कवि बाजार में कहीं जा रहे थे, उन्हें एक सुन्दर युवती का अति मधुर स्वर सुनाई दिया। वह कोई गीत गा रही थी। कवि को यह आवाज इतनी पसंद आई कि वह अपना काम व रास्ता भूल गए। चल पड़े उसी दिशा में जहां से यह मधुर आवाज सुनाई दी। जब करीब पहुंचे तो उन्हें यह बात समझने में देर न लगी कि यह युवती वारांगना है। नाच-गान तथा इससे जुड़े ऐसे कार्य करती है जिससे इसे अभिशापित माना जाता था।

जब उसके पास कृष्णदास संत पहुंचे तो उसे बहुत हैरानी हुई। आने का कारण पूछा। बोले-"तुम जो भी हो, जैसी भी हो, तुम्हारी आवाज इतनी रस भरी तथा आकर्षक है कि यदि तुम भगवान श्रीनाथ के सामने नृत्यगान करो तो तुम्हें मुंह-मांगा धन मिलेगा।"

उस युवती ने यह प्रस्ताव स्वीकार करने में कोई देरी नहीं की। उसने स्नान किया, वस्त्र बदले। वीणा ली। पहुंच गई श्रीनाथ के मंदिर में। वीणा, मृदंग, झांझरें...पायल...नृत्य...गीत...मधुर कंठ...और...फिर ऊपर बताई पंक्तियां जब गुनगुनाईं, गाईं तो सब चकित रह गए। श्रोताओं के मन से उस नारी की पूर्व की तस्वीर मिटने लगी। लोग उसके स्वर में स्वर मिलाकर गुनगुनाने लगे...और फिर बनती गई एक धार्मिक नारी...प्रभु श्रीनाथ की प्यारी...भजन गायिका।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

ऋषियों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने निर्मित किया मानसरोवर

पुरातन काल से ऋषि-मुनियों को कैलाश पर्वत तथा इसके वनों व कन्दराओं में तप करना अच्छा लगता था। भगवान शिव भी तो कैलाश की चोटियों पर हजारों वर्षों तक निवास करते रहे। महर्षि भृगु तथा भगीरथ का इस पर्वत पर तप करना सर्वविदित है।

पुराणों में मिलता है कि ब्रह्मा, मारीचि तथा वशिष्ठ भी इस पर्वत पर तप किया करते।

इस बार बहुत से महर्षि इकट्ठे हुए। ब्रह्माजी से मिले। जब उनसे वहां आने का प्रयोजन पूछा गया तो उनका उत्तर था–"हे प्रभु! हमें नित स्नान के लिए मंदाकिनी घाटी तक पहुंचना पड़ता है। केदारनाथ से उत्पन्न मंदाकिनी बहुत दूर पड़ती है। समय भी अधिक लगता है। इससे हमारी तपस्या के समय में कमी हो जाती है।"

यह सुनकर ब्रह्मा ने पूछा–"तो तुम क्या चाहते हो?"

"भगवन! हमारे स्नान की व्यवस्था यहीं, कैलाश पर हो जाए। हम आभारी रहेंगे।'

ब्रह्माजी ने उनकी प्रार्थना पर ध्यान दिया और कर दी कृपा। हो गया सरोवर का सृजन। नाम पड़ा-कैलाश सरोवर। बाद में मानसरोवर कहलाने लगा। तब से अब तक, यह सरोवर विद्यमान है। कठिन मार्ग है फिर भी यात्री यहां पहुंचते हैं। स्नान कर अपने को धन्य मानते हैं।...

ब्रह्मा, मारीचि और वशिष्ठ के पुत्रगणों के प्रयत्नों का परिणाम है यह। जहां कभी भगवान शिव के चरण पड़ते थे वहां आज एक साधारण यात्री भी पहुंच रहा है। यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन है तब और अब में।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शिव भी हुए अचम्भित

पार्वती ने भगवान शिव की चरणरज को अपने मस्तक पर लगाते हुए कहा–"प्रभु! मैंने आपको पाने के लिए अनेकानेक वर्षों तक तप किया है। आज आप मेरे सम्मुख हैं। मैं तो धन्य हो उठी।"

"अब क्या इच्छा है। कहो।"

"मैं आपको पति-रूप में पा लेना चाहती हूं। इसी इच्छा के निमित्त मैंने घोर तप किया।"

"तथास्तु।"

"आपका आशीर्वाद तथा स्वीकृति पाकर तो मेरी चिर संचित अभिलाषा ही पूर्ण हो गई।...किन्तु...।"

"कोई शंका?"

"नहीं। भगवन् नहीं पर...हजारों साल तप करने से, गर्मी, सर्दी, वर्षा के प्रभाव से मेरा रंग पूर्णतः काला हो गया है।...यही एक चिन्ता है कि कहीं आप मेरे श्याम रंग से ऊब न जाएं।"

"ओह! तो यह बात है। तुम्हें गोरा तन चाहिए। अभी लो।" कहते-कहते भगवान शिव ने गंगाजल से पार्वती के तन को मल-मलकर नहला दिया। धो डाला। देखते-ही-देखते पार्वती का श्याम तन शंख की तरह गोरा, चन्द्र की तरह शीतल कांति वाला तथा कुन्द पुष्प की भांति श्वेत-कोमल हो गया। स्वयं भगवान् शिव भी इस बर्फ से गोरे तन को देखकर अचम्भित रह गए।

उसी दिन से पार्वती का नाम महागौरी पड़ गया। चार भुजाओं वाली महागौरी को मां दुर्गा की आठवीं शक्ति के नाम से पूजा जाने लगा। तब से अब तक भी उन्हें उसी रूप में याद किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

भोजन का प्रबन्ध किया था सूर्यदेव ने

सूर्यदेव की पत्नी का नाम है रानकदे।

एक बार इस दम्पति में बहस छिड़ गई।

"आप सुबह निकलते हैं...रात को लौटते हैं...कहां रहते हैं आप सारा दिन?" पत्नी ने पूछा।

"मैं अपने कार्य में व्यस्त रहता हूं।"

"क्या करना होता है आपको?"

"मुझे हर जीव की चिंता है। मेरे पर बड़ी जिम्मेवारी है। हाथी को मन-भर भोजन तो चींटी को कन-भर,..किन्तु सबको मिलता रहना चाहिए। ऐसी व्यवस्था करना मेरे लिए जरूरी है।"

यह सुनकर रानकदे के मन में पति की परीक्षा लेने का विचार आया। पति भी उसकी मंशा को भांप गए। बोले-"प्रिय! मैं चलूं?"

"हां, जाओ। परन्तु अपने कर्त्तव्य का ठीक से पालन करना। देखना कोई चींटी कन-भर अनाज के बिना भूखी न रह जाए।"

"ठीक है प्रिय।" कहते-कहते सूर्यदेव चले गए।

उनके जाते ही पत्नी रानकदे ने एक चींटी को उठाकर अपनी बिंदी की डिबिया में बंद कर दिया।

पत्नी अपने पति के आने की प्रतीक्षा करने लगी। जैसे ही उन्होंने घर में प्रवेश किया, वह झट से पूछ बैठी-"आपने व्यवस्था तो पूर्ण की न? कहीं कोई चींटी भूखी तो नहीं रह गई।"

"नहीं प्रिय, बिल्कुल नहीं। वह चींटी भी नहीं जो तुम्हारी बिंदिया वाली डिब्बी में कैद है।" कहते-कहते वह मुस्करा दिए।

"आपको कैसे पता?" हैरान पत्नी ने डिब्बी खोली।

"चींटी के मुंह में चावल का दाना था।"

"कहां से आया यह दाना?"

"प्रिय! प्रात: बिंदी लगाते समय यह अक्षत तुम्हारे माथे से गिरा। चींटी डालने से भी पहले उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया था मैंने।...मुझे सबकी चिन्ता है--अब तो मान गईं न।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत द्वारा बनाई साड़ी के कई टुकड़े कर दिये किन्तु वह शांत बने रहे

लोग सन्त तिरूवल्लुवर की धीरता, गम्भीरता व क्षमाशीलता के कई किस्से सुन चुके थे। कई बार कई लोगों ने उन्हें क्रोध दिलाने की कोशिश की, मगर इस जुलाहे सन्त ने कभी क्रोध किया ही नहीं। उनकी लोक सेवा के कारण उन्हें घर पर ही जरूरतों का सामान, पैसा-रुपया पहुंच सकता था। मगर उन्होंने परिश्रम करके ही अपनी आजीविका कमाई। एक बार उन्होंने बहुत मेहनत से एक साड़ी तैयार की। इसे बेचने गए। बाजार में बैठे इस सन्त से एक धनी परिवार के बिगड़े हुए लड़के ने पूछा—"कितनी कीमत?"

"दो रुपए।"

उस लड़के ने साड़ी के दो टुकड़े करके पूछा—"अब?"

"एक रुपया प्रति टुकड़ा।"

"और अब?" कहते-कहते उस लड़के ने प्रत्येक टुकड़े के दो-दो हिस्से कर दिये। संत ने कहा—"आठ आने।" लड़का हर बार हर टुकड़े को बीच में से फाड़ता रहा और संत से मूल्य पूछता रहा।...एक समय ऐसा आया कि पूरी साड़ी कतरनों में बदल गई। उस लड़के ने फिर पूछा मूल्य। सन्त ने कहा—"अब तो इसका कोई मूल्य नहीं। यह किसी काम नहीं आ सकता।"

लड़का उन्हें क्रोधित करना चाहता था। मगर सब बेकार। सन्त तिरूवल्लुवर शांत बने रहे। जब लड़के ने अपने अमीर होने की धाक जमाने के लिए संत की तरफ दो रुपए फेंके तो उन्होंने लेने से इन्कार किया, "जब साड़ी खरीदी ही नहीं तो पैसे क्यों?" यह सुन वह बहुत लज्जित हो गया।

अब संत ने कहा—"तुमने एक बार भी नहीं सोचा कि इस साड़ी को बनाने में खेत में किसान से लेकर धागा तैयार करने व मेरे परिवार के कई सदस्यों ने कितनी मेहनत की होगी। मैंने इससे आना-दो आना कमाना था। मगर तुमने तो हमारी मेहनत और मूल्य दोनों पर पानी फेर दिया...मैंने तुम्हें साड़ी फाड़ने से रोका होता तो तुम्हें उपदेश देने व सुधारने का अवसर ही नहीं मिलता।"

संत के संयम की ऐसी मिसाल कहीं नहीं मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

द्रोणाचार्य को अपमानित कर निकाला द्रुपद ने

'कृपि' ने अपने पति द्रोणाचार्य से कभी कोई शिकायत नहीं की थी। किन्तु एक बार अपने पुत्र अश्वत्थामा के लिए उन्हें मुंह खोलना ही पड़ा। उसी प्रसंग को देखिए।

महर्षि भरद्वाज के पुत्र थे द्रोण। पिता की मृत्यु के बाद उन्हें निर्धनता ने घेर लिया। बहुत ही बुरा समय था यह। बच्चा दूध के लिए तरसता रहता। दूध का कैसा स्वाद है, इतना भी नहीं जान सका वह। कृपि ने अपने पति द्रोणाचार्य से अपने बेटे अश्वत्थामा की दयनीय स्थिति को बयान किया।

"मैं जानता हूं।"

"केवल जानने से कुछ न होगा। कुछ तो करना ही पड़ेगा।...अभी कल ही की बात है। इसके मित्रों ने इसकी खूब खिल्ली उड़ाई।"

"वह क्यों, कैसे?" द्रोणाचार्य ने पूछा।

"उन्होंने आटा लिया। उसे पानी में घोला। थोड़ा मीठा भी डाल दिया। पिला दिया हमारे लाडले को-यह कहकर कि दूध है-पीयो।"

"तब?"

"हमारे बेटे ने इसे पी लिया। बड़े चाव के साथ। और उछल पड़ा कहते हुए कि आज उसने दूध पीया है। लड़के जोर-जोर से हंसने लगे थे तब।"

"ओह विधाता! हमारी इतनी दुर्दशा।" कुछ सोचकर निर्णय ले लिया। द्रोण चले गए अपने सहपाठी, बचपन के दोस्त राजा द्रुपद के पास। सदा सहायता करने तथा मित्रता निभाने को कहा करता था वह। मगर आज उसने भी ठुकरा दिया।

द्रोणाचार्य को अपमानित करके महल से निकाल दिया राजा द्रुपद ने। निर्धन, दीन-हीन द्रोण अपने भाग्य को कोसता हुआ, खाली हाथ लौट पड़ा अपने आश्रम को।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

लोमश से शाप तथा वर –दोनों पाए ब्राह्मण ने

जीवन और ब्रह्मज्ञान पर विस्तृत जानकारी दे रहे थे महर्षि लोमश। श्रोता उन्हें बहुत ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। किन्तु श्रोताओं में एक ब्राह्मण, जो अपने आप को बहुत बड़ा ज्ञानी मानते थे, उन्हें बार-बार टोक रहे थे।

पूछ लिया–"महर्षि! मुझे बताएं कि भगवान की भक्ति कैसे की जाती है?" इस प्रकार व्यवधान उत्पन्न करने वाले इस ब्राह्मण को लोमश ऋषि ने क्रोधित होकर शाप दे दिया–"कौवे की तरह कांव-कांव कर रहे हो, तू तो अगले जन्म में कौवा बनेगा।"

ब्राह्मण शाप पाकर शांत बैठ गया। अब पहले-सा व्यवधान नहीं हो रहा था। इसने लोमश ऋषि को चकित कर दिया। बोले–"मूर्ख! इस शाप से भी कोई चिन्ता नहीं हुई तुम्हें।"

अब ब्राह्मण ने बड़ी विनम्रता से कहा–"ऋषि महोदय कैसी चिन्ता। जो कुछ होता है, सब प्रभु की इच्छा से ही होता है। यदि मुझे यह शाप मिला है तो यह भी उसकी इच्छा से। फिर शोक क्यों? चिन्ता क्यों?"

इस उत्तर ने लोमश ऋषि को बहुत प्रसन्न कर दिया। जो ऋषि कुछ देर पहले क्षुब्ध होकर शाप दे चुके थे बोले–"तुम्हारी प्रभु भक्ति में इतनी ज्यादा आस्था सराहनीय है। लो अब मैं तुम्हें वर भी देता हूं–तुम काक रूप में जहां भी रहोगे वहां एक योजन तक कलियुग का कोई प्रभाव न होगा। तुम्हारी भक्ति भाव में कोई अन्तर न आएगा। अपनी इच्छा से कोई भी शरीर धारण कर सकोगे, माया भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेगी।"

पाठक जानकर चकित होंगे कि यही शापित ब्राह्मण बाद में वर पा लेने से धन्य हो गया। अगले जन्म में काक भुशुंडि बना। इसी ने गरुड़ को रामचरित मानस की महत्ता सुनाई, समझाई। आज तक सम्मानित होता है काक भुशुंडि।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

व्याकरण-दोष सहर्ष स्वीकार किए केशव भारती ने

संकीर्तन चल रहा था। चैतन्य महाप्रभु ऊंचे आसन पर बैठे थे। संकीर्तन के समाप्त होते ही एक सेवक ने आकर कहा–"प्रभु! प्रकांड विद्वान पंडित केशव भारती आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं। उन्होंने काशी तथा अन्य अनेक तीर्थों के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया है। संपूर्ण भारत में उनकी विद्वता की धाक है।"

"उन्हें सम्मानपूर्वक अन्दर ले आएं।"

पंडित केशव भारती ने महाप्रभु को प्रणाम किया। तभी देखते ही देखते उन्होंने गंगा मैया की स्तुति में कुछ श्लोकों की रचना कर डाली। उन्हें सुना भी दिया। महाप्रभु बेहद प्रसन्न हो गए। भावविभोर भी। इससे केशव भारती का उत्साह बढ़ने लगा। यह एक और विजय थी उनकी।

किन्तु–इस उत्साह के ठंडा होने में भी देरी न लगी। महाप्रभु ने हाथ जोड़े। कहने लगे–"विद्वान भारतीजी, कुछ कह दूं तो बुरा मत मनाना।"

"आप कहिए तो।"

"मुझे आपके इन श्लोकों में आलंकारिक दोष लगता है।...एक बार फिर दोहरा दें इन्हें।"

भारतीजी को तो इसकी आशा ही नहीं थी। उनकी अवस्था दयनीय-सी हो गई। उन्होंने तो एक बार भी न सोचा होगा कि चैतन्य महाप्रभु को संस्कृत भाषा का इतना अधिक ज्ञान है। वह व्याकरण की अशुद्धियां भी पकड़ सकते हैं। भारतीजी को अपने श्लोक में आ चुके दोषों को मानना पड़ा।

भारत के कोने-कोने में अपनी बुद्धिमत्ता व ज्ञान की धाक जमा चुके केशव भारती ने महाप्रभु के चरण छू लिए। उन्हें शिष्य रूप में स्वीकार कर लेने की भी प्रार्थना की।

पंडितराज केशव भारती ने यह भी मान लिया कि उन्हें जो अहंकार था, अब वह चकनाचूर हो चुका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

अकेला किसान पहाड़ को तहस-नहस करने जुट गया

पार्वती ने उन्हें रोकते हुए कह दिया–"प्रभु! मैं भी साथ चलूंगी।" भगवान शंकर ने इनकार नहीं किया। दोनों घूमते हुए मृत्युलोक पर आ पहुंचे। उन्होंने एक किसान को पत्थर तोड़ते हुए देखा। पहाड़ खोदने से निकलने वाले पत्थर, कंकर, रेत, मिट्टी, इसे वह किसान इधर-उधर ठिकाने लगा रहा था। पसीने से तरबतर किसान ने भगवान को देखा, फिर भी अपना काम जारी रखा।

भगवान शंकर ने पूछ लिया–"क्या कर रहे हो?"

"पहाड़ खोद रहा हूं।"

"क्यों?"

"पहाड़ के इस ओर मेरे खेत हैं भगवन्! बादल आते हैं उस ओर टकराते हैं और वर्षा करके लौट जाते हैं। इस पहाड़ की वजह से वे इधर नहीं आ पाते। मेरे खेत सूखे रह जाते हैं।"

"अकेले इस काम को कर सकोगे क्या?"

"क्यों नहीं? समय जरूर लगेगा।...मगर यह काम होगा जरूर।" दृढ़ शब्दों में किसान ने उत्तर दिया। भगवान शिव तथा पार्वती चकित होकर आगे चल दिए।

कुछ दूरी पर उन्हें पर्वतराज मिल गया। उसने झुककर प्रणाम किया।

"कैसे हो?" भोले शंकर ने पूछ लिया।

"जी! अब तक तो ठीक था। मगर अब मेरा भविष्य अंधकारमय लग रहा है उस निष्ठावान किसान की वजह से, जिससे आप अभी-अभी मिलकर आ रहे हैं।"

"तुम इतने विशालकाय। भला वह तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा?"

"प्रभु! वह दृढ़ संकल्प है। दिन में 10-12 घन्टे लगातार लगा रहता है। वह अपने संकल्प को पूरा करके चैन लेगा। यदि उसका काम अधूरा भी रह गया तो उसकी आने वाली पीढ़ियां कर दिखाएंगी।...प्रभु! मेरी रक्षा करो।"

"तो तुम भी कुछ सीखो उससे। यदि वह दृढ़ संकल्प है तो तुम भी इतने कठोर हो जाओ। तब उसकी एक न चलेगी तुम्हारे सामने।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नर तथा नारायण की जांघ से पैदा हुई उर्वशी अप्सरा

जन-श्रुतियां हैं इस प्रसंग का आधार। जानकार तो इतना भी कहते हैं कि ये ग्रंथों से निकला प्रसंग है। जो भी हो, ये घटनाएं घटी जरूर, इतना तो अवश्य मान लीजिए।

नर और नारायण भगवान विष्णु के संयुक्त अवतार थे। मूर्ति के घर अवतार लेकर ये तप के लिए निकल पड़े। गन्धमादन पर्वत पर, बद्रिकाश्रम में इन दोनों ने सैकड़ों वर्षों तक तप किया।

उनके प्रिय बाद्रिकाश्रम में स्वयं भगवान विष्णु, भोलेशंकर, भगवान कृष्ण, उनके सखा अर्जुन, महर्षि वेदव्यास ने तपस्या की। लोगों का मार्ग-दर्शन किया। कलयुग की अनेक विभूतियां भी इस धाम पर तप करती रहीं। जिनमें श्री शंकराचार्य तथा पूज्य रामानुज के नाम विशेष हैं।

यह भी माना जाता है कि नर तथा नारायण ने नारद को दो बार, दो विभिन्न स्थानों पर बद्रिकाश्रम तथा श्वेत द्वीप में दर्शन देकर कृतार्थ किया।

और यह भी मान्यता है कि नर तथा नारायण एक बार देवराज इन्द्र से रुष्ट हो गए। उसका घमण्ड तोड़ने की सोची। इसके लिए अपनी तपोशक्ति के बल पर ही उन्होंने अपनी जांघ से अप्सरा उर्वशी को उत्पन्न करके दिखा दिया। आज सारा आर्यावर्त, सारे भारतवासी उसी की सन्तान मानी जाती हैं अतः भारतवासी नर और नारायण की ही कृपा का फल हैं।

जनश्रुतियां भी तभी अपने पांवों पर टिकी रह सकती हैं यदि इनके पीछे कुछ न कुछ ऐतिहासिक अथवा पौराणिक सत्यताएं होती हों, वरना नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत ने आतुर होकर सुन्दरी का दीदार तो किया किंतु फोड़ डालीं अपनी आंखें

भगवान श्रीकृष्ण के भजन में अकसर मग्न रहा करते सन्त बिल्वमंगल। घर में हों, या मंदिर में, अथवा किसी सड़क पर, वह प्रभु ध्यान में रहा करते। एक दिन वह श्रीकृष्ण के भजन को गाते हुए किसी रास्ते से निकले। उन्हें रास्ते में एक अति सुन्दर युवती मिली। संतजी उसी पर मुग्ध हो गए। लावण्य ऐसा कि देखते बने। आगे-आगे वह युवती, पीछे-पीछे हो लिए सन्तजी। भूल गए भगवान को। नहीं याद रहा उन्हें कृष्ण का भजन। उस युवती को पास से देखने की प्रबल इच्छा।

युवती को भी पता चल गया सन्त की नीयत का। वह और तेज चली और जा पहुंची अपने घर। जल्दी से किवाड़ बन्द कर लिए। संत बिल्वमंगल ने सोचा कि वह तब तक द्वार के बाहर बैठे रहेंगे जब तक उन्हें पुनः सुन्दरी के दर्शन नहीं हो जाते। बैठ गए धरना देकर।

युवती ने अपने पति को सन्त के व्यवहार की बात कह दी। पति समझदार था। सोचा यदि इसे देखने मात्र से सन्त की पिपासा शान्त हो जाती है तो दे देते हैं एक अवसर। पति ने पत्नी को कहा कि वह बाहर आकर उस सन्त के सम्मुख दो पल खड़ी हो जाए। वैसा ही किया गया। जैसे ही सन्त ने उस अति सुन्दर युवती के दीदार किए, तभी पास के विल्ववृक्ष के पेड़ से दो कांटे लेकर, दोनों आंखों को बेंध लिया। कांटे चुभते ही रक्त की धारा बह निकली। किन्तु सन्त को इससे कोई दुख नहीं हुआ। पीड़ा को भी खुशी-खुशी सहन कर लिया। पापी आंखों को दंडित कर सन्त को सन्तोष हुआ। वह उसी घड़ी उस नगर को त्यागकर वृंदावन के लिए चल दिए। वहीं रहकर श्रीकृष्ण के भजन में जीवन गुजार दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

दूल्हा रज्जब ने जब संत दादू को गुरु माना तो बरात लौटा दी और सदा दूल्हे के वस्त्रों में रहे

रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांधा मौर।
आया था हरि भजन कू, करै नरक की ठौर।।

रज्जब जब युवक हुआ तो उसका विवाह निश्चित कर दिया गया। बरात सांगानेर से आमेर जा रही थी। आधे रास्ते में बरात आराम के लिए रुकी। जहां रुकी वहां पर दादू संत में भेंट हो गई। कुछ बातचीत के बाद दादू ने रज्जब को ऊपर की दो पंक्तियां कह दीं। इतना सुनते ही रज्जब ने विवाह न करने व साधु बनने का निश्चय कर लिया। माता-पिता से भी यही बात कह दी। उन्हें बहुत धक्का लगा। उन्होंने बहुत मनाया, मगर दूल्हे के वेश में रज्जब ने कह दिया कि वह इस वेश को कभी नहीं छोड़ेंगे तथा विवाह भी नहीं करेंगे।

परिवार के सदस्यों ने संत दादू से कहा कि वह युवक को समझाकर सीधी राह पर ले आएं। यदि बरात नहीं गई तो लड़की वाले परेशान होंगे तथा जो जगहंसाई होगी सो अलग।

संत दादू ने दूल्हा बने युवक रज्जब से कहा–"यदि तुम्हें ईश्वर की भक्ति ही करनी है तो साधु-सन्त मत बनो। घर-गृहस्थी में रहकर भी ईश्वर को याद किया जा सकता है। बिना विवाह हो सकता है तुम्हारा मन किसी सुन्दर परस्त्री पर आ जाए, उससे बहुत बुराई मिलेगी।"

रज्जब का संत दादू को उत्तर था–"मेरे नयनों में आपकी तथा प्रभु की जो सुन्दर मूर्ति समा गई है, उसके बाद किसी नारी का सौन्दर्य भला किस काम का।"

माता-पिता को बरात वापस ले जानी पड़ी। किन्तु रज्जब ने अपने दूल्हे के वेश को जीवन भर धारण किये रखा। जब पूछो ऐसा क्यों, तो उनका उत्तर होता–"मेरी प्रियतम से (दांदू संत से) इसी वेश में पहली मुलाकात हुई थी, इसलिए इस वेश को उतार देने का तो कोई मतलब नहीं।"...और यही युवक बाद में संत रज्जब के नाम से पहुंचे हुए सन्त हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

राज्य के बदले ज्ञान पाने की इच्छा की जनक ने

वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों तथा पुराणों के ज्ञाता थे विद्वान राजा जनक। किन्तु वह प्रभु तथा उसकी अपरम्पार माया का अधिक से अधिक ज्ञान पाना चाहते थे। उन्हें धर्म मार्ग पर आगे से आगे की इच्छा बनी रहती।

उनकी भेंट ऋषि कुमार अष्टावक्र से हो गई। राजा इस कुमार से बेहद प्रभावित हो गए! राजा ने कहा–"आप मुझे सच्चा ज्ञान प्रदान करें। मैं इसके लिए विनम्र निवेदन करता हूं।"

"बिना गुरु-दक्षिणा का संकल्प किए आप कैसे पाओगे ज्ञान?"

"मुझे तो ज्ञान चाहिए। अपनी प्यास बुझानी है। इसके लिए मैं अपना अपार राजकोष आपके चरणों में रखने को तैयार हूं। ले लीजिए।"

"राजा जनक! आप ठीक कहते हैं किन्तु यह आपका है ही नहीं, तो मुझे कैसे देंगे? यह तो प्रजा का धन है। प्रजा का खजाना है। आप इसे यों दान में देने के अधिकारी नहीं।"

"तब मेरा पूरा राज्य लेकर मुझे ज्ञान प्रदान करें।"

"राज भी अनित्य है, ऐसा मेरा मानना है।"

"मेरा शरीर तो मेरा अपना है ऋषि कुमार, आप इसे ही गुरु-दक्षिणा में स्वीकार करें।"

"राजन! आपका शरीर लेकर क्या करूंगा? यह आपके अधीन है ही नहीं। यह तो आपके मन के अधीन है।"

"ठीक कहा आपने। तब आप मेरा मन ही स्वीकार करें। मैं इसे अर्पित करता हूं।" राजा जनक ने करबद्ध कहा।

इस पर अष्टावक्र ने सहर्ष कहा–"मैं आपके मन को दक्षिणा के रूप में स्वीकार करता हूं।...राजन! आज से आप अपने मन को शुद्ध ज्ञान के अधीन करें। आज से ही समस्त जीवों में अपनी आत्मा को देखें। यही सच्चा ज्ञान है। ज्ञान की चरम स्थिति है।"

यह उपदेश पाकर राजा जनक धन्य हो उठे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

नियमों का पालन किया
गुरु चरक ने

गुरुदेव चरक ने किसान के घर पहुंच, खेत से एक फूल तोड़ने की इजाज़त लेनी थी। इसी के लिए उन्हें काफी दूर तक चलना पड़ा। किन्तु अभी भी घर नहीं आया। पूछ लिया–"बेटा हमें कृषक के घर तक पहुंचने के लिए और कितना चलना पड़ेगा।"

"अब तो पहुंचे कि पहुंचे। केवल पन्द्रह–बीस मिनट का रास्ता शेष है।" गुरुदेव चरक अब तक हजारों फूलों पर काम कर चुके थे, इनके गुण–अवगुण जांच चुके थे। औषधियों के लिए उपयोगिता–अनुपयोगिता की सूची तैयार कर ली थी।

किन्तु आज...उनके चलते कदम रुक गए थे। एक खेत में लहलहाता सुन्दर, नई किस्म का फूल उन्हें आकर्षित कर रहा था। पर इसे अपनी मरजी से तोड़ा नहीं। इसके स्वामी की स्वीकृति लेनी थी।

शिष्य ने तो कहा था–"गुरुजी! आपके पास राज्याज्ञा मौजूद है। आप परीक्षण के लिए कहीं भी किसी भी फूल, वृक्ष, वनस्पति को स्वेच्छा से तोड़, या उखाड़ सकते हैं। अतः तोड़ लेते हैं इस एक फूल को।"

"नहीं बेटा नहीं। ऐसे नहीं। यदि हम प्रजा से इस प्रकार मनमानी का व्यवहार करेंगे तो उनसे अच्छे व शुद्ध आचरण की आशा नहीं कर सकते।" तब यह था गुरु चरक का उत्तर।

इसीलिए तो नाम–पता पूछकर उन्हें खेत के स्वामी के घर, पैदल जाना पड़ा। केवल फूल को तोड़ने की आज्ञा लेने के लिए। ऐसा सद्व्यवहार था गुरुदेव चरक का।

गुरु चरक ने इस प्रकार के नियमों को जीवन भर निभाया! बहुत बार कठिनाई भी झेलनी पड़ी उन्हें, मगर चिन्ता नहीं की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

बछड़े ने ध्यान से कथा सुनी तो लोगों ने उसकी बुरी तरह से पिटाई कर दी

शिवापुर के एक बुजुर्ग जोशी ने वृद्धावस्था में विवाह तो किया किन्तु चुना एक बालिका को। यह बालिका थी बाद की सन्त बहिनाबाई–महाराष्ट्र की रहने वाली। दोनों की आयु में तो बड़ा अन्तर था ही, विचारों में भी बड़ा अन्तर था। पति नास्तिक था। धर्म में बिल्कुल रुचि न लेने वाला। अल्पायु की पत्नी धर्म चिन्तन किया करती।

एक सायं विट्ठल-मंदिर में जयराम स्वामी ने कीर्तन आरम्भ किया। इसी कीर्तन में पहुंची बहिनाबाई भी। उसके पीछे-पीछे आ गया उन्हीं का एक बछड़ा। वह भी एक कोने में खड़ा होकर कथा सुनने लगा। किन्तु कुछ लोगों ने बछड़े को वहां से हटाना चाहा। यह नहीं हटा। फिर इसकी पिटाई होने लगी। तो भी यह डटा रहा। मार खाता रहा। कथा से जयराम स्वामी कुछ देर के लिए उठे। उसी ओर से निकले। उन्होंने बछड़े की पिटाई और बहिनाबाई की उदासी को देखा। पीटने वालों को रोका। कहा कि यह अवश्य कोई पुण्य आत्मा है। इसे कथा सुनने दें। साथ ही उन्होंने रो रही बहिनाबाई के मस्तक पर हाथ रखकर उसे धीरज धरने को कहा।

रात को पति जोशी को शाम की घटना का पता चला। यह भी सुना कि जयराम स्वामी ने परपुरुष होते हुए भी उसकी पत्नी बहिनाबाई के मस्तक को हाथ से स्पर्श किया था। केवल इतनी-सी बात के कारण जोशी ने पत्नी की खूब पिटाई करते हुए उसके चरित्र पर दाग लगने का इलजाम लगाया। मालिक मकान ने आकर उन्हें रोका। दो-तीन दिन बीते। बछड़ा पिटाई के घाव व दर्द से जूझता हुआ मर गया। इससे भी बहिनाबाई को बहुत धक्का लगा। सन्त तुकाराम ने रात्रि स्वप्न में आकर बहिनाबाई को गीता की प्रति से मंत्र दिया। अगले दिन जोशी ने इसे ढोंग कहकर सन्त तुकाराम को भी बुरा-भला कह दिया। और...स्वयं घर व पत्नी त्यागकर जाने लगा।

ठीक उसी समय जोशी के शरीर में पीड़ा शुरू हुई। ये दर्दें इतनी बढ़ीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

कि वह जमीन पर लेटकर रोने लगा। तभी ध्यान आया कि उसने सन्त तुकाराम को अपमानित किया था। मन ही मन अपनी भूल स्वीकार कर उनसे क्षमा मांगने लगा। हृदय से पश्चाताप करने लगा। सन्त तुकाराम ने इस क्षमा याचना को स्वीकार कर, जोशी को क्षमा कर, ठीक कर दिया। उसी वक्त से जोशी ने पत्नी को गुरु मान पूरा सम्मान देना शुरू कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मुहम्मद साहब ने कहा था-'सारी दुनिया अल्लामियां ने बनाई है'

हरिकीर्तन पर पाबन्दी लगा दी गई। निजाम नहीं चाहते थे कि किसी प्रकार का जाति-द्वेष फैले। पुलिस को भी हिदायत थी कि वह कड़ी नजर रखे। इसके बावजूद भी सन्त गाडगे (महाराष्ट्र वाले) ने नांदेड़ जिला के एक गांव में हरिकीर्तन की घोषणा कर दी। यह सूचना दूर-दूर तक गांवों में पहुंचने लगी। निश्चित तिथि तथा समय पर कीर्तन सुनने के लिए हजारों लोग आ पहुंचे। उधर सरकार भी सचेत हो गई। संगीनधारी पुलिस भी पहुंच गई। पुलिस अधिकारी ने आकर इसे रोकने के इरादे से सन्त गाडगे से बात शुरू की।

बातचीत के दरम्यान गाडगे महाराज ने पुलिस अधिकारी से कहा-"हम न तकरीर करने वाले हैं न ही किसी भाषण से लोगों की भावनाओं को उत्तेजित करेंगे। हमने तो साधारण हरिकीर्तन करना है।...खैर आप अपने एस पी को मेरा आदाब-अर्ज जरूर कह देना।" संत ने कहा।

"आप तो अच्छा उर्दू भी बोल लेते हैं।"

"क्यों नहीं। सैकड़ों सालों से हम लोग इकट्ठे रहते हैं। एक-दूसरे के रहन-सहन तथा खान-पान से वाकिफ हो जाना जरूरी होता है।...आप मुसलमान हैं न!...आप कुरान भी रोज पढ़ते होंगे।" संत ने पूछ लिया।

"हमारी ड्यूटी ही ऐसी है कि रोज वक्त नहीं निकलता। फिर भी कभी-कभी जरूर वक्त निकाल लेता हूं।...आज भी यहां हूं।...जब घर पहुंचूंगा तब थोड़ा पढ़ लूंगा।"

"आप तो जानते ही हैं कि मुहम्मद साहब ने कुरान में कहा है कि सारी दुनिया अल्लामियां ने बनाई है...आसमान भी उन्हीं की देन है...दरिया भी। और हां जरा बताओ हिन्दू-मुसलिम किसने बनाए।"

"ये सभी उसी अल्ला की देन हैं।" पुलिस अधिकारी बोला।

"जब मुसलमानों को नमाज पढ़ने का हक है तो हिन्दुओं को भी इबादत करने का हक है।...मरने के बाद हिन्दू हो या मुसलमान सब खाक हो जाते हैं,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

मिट्टी में मिल जाते हैं। इस तरह दोनों एक समान ही तो हैं अल्ला की नजर में।...अच्छा मेरा समय हो गया है क्या मैं थोड़ी इबादत कर लूं।'

"हां, हां, कीजिए।" थानेदार ने कह दिया।

गाडगे महाराज ने अपने सामने बैठे श्रोताओं को भजन करने को कहा...अपने प्रवचन किए...ठीक समय पर हरिभजन बन्द हो गया।...थानेदार देखता रह गया। उसने तो सोचा था कि तबला बजेगा...सितार होगा...पेटी-हरमोनियम होगा...ऐसा कुछ भी न कर गाडगे महाराज ने हरिकीर्तन कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

पूजा में व्यवधान होता देख उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया

जिस व्यक्ति का झुकाव पूजा-पाठ की ओर हो, मन ईश्वर के चरणों से जुड़ा हो, उसे 'पद' पर बने रहने की इच्छा नहीं होती। ऐसा ही कुछ हुआ सन्त महीपति के साथ। वह कभी ग्राम प्रधान के पद पर आसीन थे तथा सरकारी कार्यों के लिए समय निकाला करते। इस प्रकार उनके पूजा-पाठ में कमी हो जाती थी। जब-जब ऐसा हुआ उन्हें बहुत दुःख हुआ।

आज भी वह दैनिक पूजा में बैठे थे कि एक सिपाही ने आकर कहा-"प्रधानजी चलिए। आपको जागीरदार ने बुलाया है।"

"उनसे कहो कि मैं पूजा पूरी कर आ जाऊंगा।"

"नहीं! कुछ काम ही ऐसा है। उन्होंने जोर देकर कहा था कि सभी काम छोड़कर चले आएं।" सिपाही ने कहा।

"ठीक है रुको। अभी चलता हूं।" महीपति ने अपनी पूजा को वहीं रोककर, साथ जाना जरूरी समझा। चले गए। काम समाप्त किया। लौट आए किन्तु सारे मार्ग में उनका मन उन्हें कचोटता रहा। उन्होंने क्या किया? क्यों छोड़ी पूजा बीच में ही। सोचते हुए घर पहुंचे। शुद्ध होकर पूजा में बैठ गए। पूजा पूरी की।

भोजन करने से पूर्व उन्होंने त्यागपत्र लिखा। इसे नौकर के हाथ जागीरदार के पास भेज दिया। और फिर प्रण किया कि वह अपनी लेखनी का प्रयोग केवल ईश्वर की स्तुति में ही किया करेंगे और किसी कार्य में नहीं। उन्होंने कुछ भक्ति भाव की पुस्तकें तैयार कीं जिनमें 'भक्ति विजय' बहुत प्रसिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त उनकी पुस्तकें-सन्तलीलामृत तथा भक्तलीलामृत भी बहुत ख्याति प्राप्त हैं। कुछ अन्य कृतियां भी हैं जिन्होंने पूर्व के ग्राम प्रधान महीपति को सन्त पद दिलाकर सन्त महीपति बना दिया तथा सदा-सदा के लिए अमर कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

गौरीबाई के शरीर पर अनेक सुइयां चुभो दी गईं, किन्तु उसे पता ही न चला

यह बात तब की है जब गिरिपुर पर राजा शिवसिंह का शासन था। उन्हें पता चला कि गुजरात में सन्त कवयित्री गौरीबाई हर समय भक्ति में लीन रहती है। उन्होंने भी देखा कि वह धार्मिक वृत्ति की नारी है जो भजन-पूजन तथा ध्यानावस्था में पूरी तरह खो जाती है। इस राजा ने उस सन्त कवयित्री के लिए एक मंदिर का निर्माण करवा दिया।

यह सन्त महिला हर समय वहीं रहकर पूजा-पाठ व ध्यान में लीन रहने लगी। कुछ लोग उसे ढोंगी भी मानने लगे। वह ध्यान के समय बाहरी दुनिया को पूरी तरह भूल जाती। जिन लोगों को उसके व्यवहार में सन्देह बना रहता उन में से एक वृद्ध स्त्री हरियन भी थी।

हरियन ने गौरीबाई की परीक्षा लेनी चाही। एक दिन जब वह ध्यानावस्था में थी हरियन ने उसके शरीर पर बहुत-सी सुइयां चुभो दीं। कोई पीड़ा नहीं। कोई आभास नहीं। ध्यान में पूर्ववत बैठी रहीं गौरीबाई। हरियन को यह घटिया काम करते किसी ने नहीं देखा था। वह मंदिर से चुपचान निकली और अपने घर को चली गई। बहुत खुश थी वह।

दिन में एक दासी ने देखा तो गौरीबाई को बताया। एक-एक करके सभी सुइयां निकाली गईं। बात फैल गई। बहुत से लोगों से पूछा गया। किसी ने भी ऐसा करने की बात नहीं मानी। हरियन भी अनजान बनी रही। बात आई-गई हो गई। कुछ ही दिन बीते कि हरियन बुढ़िया के शरीर में अचानक कोढ़ (कुष्ठ रोग) फूट आया। उसे अपने पाप का तो पता था ही। वह रोती-चिल्लाती सन्त कवयित्री गौरीबाई के मंदिर पहुंची। नाक रगड़ते हुए सारी गलती मान ली। गौरीबाई किसी को दुखी नहीं देख सकती थी। उसने हरियन के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"यह रोग यहीं रुककर खत्म हो जाएगा। आगे तो बढ़ेगा ही नहीं। हां इसके निशान ज्यों-के-त्यों बने रहेंगे ताकि तुझे अपने किए हुए गलत काम की याद आती रहे और तू किसी भले व्यक्ति को सताने की सोच भी न सके।"

वैसा ही हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

“दृढ़ संकल्प से कठिन काम भी सरल हो जाते हैं”–श्रीपाद दामोदर

जो व्यक्ति अपने मन को अडिग रखता है। मजबूती देता है। वह बड़े से बड़े कार्य को भी आसानी से पूरा कर लेता है और...यदि कोई संकल्प लेकर किसी काम में हाथ डालता है तो उसे कभी असफलता मिलती ही नहीं।

उदाहरण है पंत श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का। उन्होंने वेदों में अपार योग्यता अर्जित की थी। वह स्वयं कहा करते–मैं तो वेदों के विषय में कुछ नहीं जानता था।...संकल्प किया। परिश्रम भी। अध्ययन में अकसर जुटा रहता। आज काफी कुछ समझ चुका हूं।

सातवलेकरजी वृद्ध हो चुके थे। दाढ़ी पूरी तरह सफेद थी। मगर शक्ति ऊर्जा अपार थी। उनकी स्फूर्ति के सामने तो युवक भी घुटने टेकते। लोहा मानते। एक व्यक्ति ने इसका कारण जानना चाहा। उनका उत्तर बड़ा ही स्पष्ट था तथा हम सबके लिए मार्गदर्शक। बोले–“जीवन स्फूर्ति तो केवल संकल्प की एक लहर ही है।...संकल्प दृढ़ होना चाहिए। फिर क्या, इसकी तस्वीर भी बेहद साफ-सुथरी उभरेगी मन-मस्तिष्क पर...जितनी स्पष्ट यह तस्वीर होगी, हमारी इन्द्रियां भी उतनी ही सक्रिय होंगी। मैंने युवाओं का मुकाबला करने की मन:स्थिति बना रखी है। तभी तो लाभ मिल रहा है।...तभी तो तरुणों-सी स्फूर्ति है मेरे वृद्ध शरीर में।”

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

प्रशंसक तथा निन्दक का समान आदर करने की बात कहतीं संत लल्लेश्वरी

मात्र बारह वर्ष की आयु में लल्लेश्वरी का विवाह हो गया। वह कश्मीर की रहने वाली थीं। इस बालिका की ससुराल में हर समय प्रताड़ना हुआ करती। उन्होंने हर समय दुर्व्यवहार कर बालिका का जीना दूभर कर दिया। जब पानी सिर से ऊपर निकलने लगा तो वह घर छोड़कर भाग गई। ससुराल वालों ने भी उसे ढूंढ़ने की कोशिश नहीं की। वह सीधी एक पहुंचे हुए साधु के पास गई। सेदवापु नाम के इस सन्त ने लल्लेश्वरी को दीक्षा देकर ईश्वर भक्ति की ओर पूरी तरह मोड़ दिया।

अब लल्लेश्वरी मीरा की तरह गलियों में, चौराहे पर, मंदिर में गाने व नाचने लगी। मतवाली बनी इस युवती का लोग मजाक उड़ाने लगे। किन्तु वह कभी भी इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया करती। हर समय ईश्वर की मस्ती में रहती रही। बहुत बार बच्चे उसके पीछे लग जाते तथा जो मन में आता बोल देते।

एक बार मंदिर जाते समय इस सन्त महिला ने एक व्यापारी से एक कपड़ा मांगा। फिर इसके दो टुकड़े करवाकर दोनों कन्धों पर डाल लिये। मंदिर पहुंची। रास्ते में जितने लोग मिलते उसकी ओर देखती। अभिवादन हो या निन्दा, सहर्ष स्वीकार करती। उसने प्रशंसा की गांठें एक कपड़े पर तथा निन्दा की गांठें दूसरे कपड़े पर बांधनी शुरू कर दीं। जब उसी कपड़े के व्यापारी के पास पहुंची तो उसे प्रशंसा व निन्दा की गांठों को गिनने को कहा । ये संख्या में समान निकलीं। तब सन्त लल्लेश्वरी ने कहा–"हमें जीवन में प्रशंसा से खुश नहीं होना चाहिए तथा निन्दा से दुखी भी नहीं। ये सन्तुलन बनाए रखते हैं। अतः हमें लोगों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। प्रशंसक तथा निन्दक को समान आदर देना चाहिए।...जो ठीक मार्ग लगे, उसी पर चलते रहना चाहिए। लोगों के व्यवहार या लोगों की बातों की जरा भी परवाह नहीं करनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शमशान में काली से खुलकर बात की वेदान्ती ने और बने रहे निडर

नारायण भ्रान्तन् केरल के रहने वाले वेदान्ती थे तथा उनका यश चारों ओर फैला हुआ था। एक बार वह भिक्षा लेकर जा रहे थे कि रास्ते में शमशान नजर आया। भूख लगी थी। वहीं चूल्हा बनाकर चावल बनाने लगे। तभी एक जोर की आवाज सुनाई दी–"कौन हो तुम? यहां कैसे? यह तो हमारे खेलने का स्थान है। हम शमशान-काली के भक्त रोज की तरह यहां खेलेंगे।"

"हां-हां खेलो। रोका किसने।" भ्रान्तन् ने लापरवाही से कहा।

"हम नाचते तो हैं किन्तु आदमी के सामने नहीं। चले जाओ।"

"ठीक है। आज अपना नृत्य रहने दो। कल सही।"

"हमारा नियम है कि हम यहीं नाचते हैं और यहीं नाचेंगे।'

यह सुनकर वेदान्ती भ्रान्तन् भी अड़ गए। डरे तो बिल्कुल नहीं। बोले–"मेरा भी अपना नियम है जहां बैठ गए सो बैठ गए।" इतना सुनते ही शमशान-काली के अनुचर इस ब्राह्मण को तरह-तरह से तंग करने लगे।

वेदान्ती की निर्भीकता देखकर शमशान-काली ही प्रकट हो गई। बोली–"तुम्हारी निडरता ने हमें प्रसन्न किया। अब हम ही यह स्थान छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं–नृत्य के लिए। किन्तु हमारा एक और नियम भी है, जो अटल होता है।...जो भी कोई हमारा रास्ता रोकता है उसे हम वरदान या शाप, कुछ न कुछ अवश्य देकर जाते हैं।...तैयार हो जाओ।"

इतना सुनते ही नारायण भ्रान्तन् ने कहा–"आप मुझे भयभीत करने की निरर्थक कोशिश मत करें। आप जो देना चाहें दे दें। मैं न शाप से डरता हूं ना वरदान पाने की चाह है।...बस इतना कृपा कर बता दें कि मेरी मौत कब होगी।"

"पूछ लिया है तो सुनो"–कहकर शमशान-काली ने उन्हें मृत्यु की तिथि व समय बता दिए। यह सुनकर वेदान्ती ने कहा–"यदि तो आप वर देने की शक्ति रखती हैं तो मुझे मृत्यु की निश्चित तिथि से बचा लें।...एक ही दिन का अन्तर मांगता हूं। पहले या बाद में मारें।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

शमशान-काली असमंजस में पड़ गई। सोच-विचार के बाद बोली-"यह मेरे अधिकार में नहीं। आपको तो पूर्व निश्चित दिन को ही मरना पड़ेगा।" इतना सुनते ही भ्रान्तन् बहुत जोर-जोर से हंसने लगे। बोले-"यह तो मैं जानता थां। तभी तो तुम लोगों से डरा नहीं। नियति की गति केवल मनुष्य का पुरुषार्थ बदल सकता है। अन्य नहीं।...आप लोग भी नहीं।" कहते-कहते उन्होंने चूल्हे की आंच ठीक की तथा भोजन बनाने में लग गए।

SPS Central Library
Acc No.
....
Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

संत अमृतराय के देह-प्रारब्ध तत्त्वज्ञान को पूर्णतः सत्य माना फकीर ने

'वैराग्यभाग्यासारखे भाग्य नाहीं।' जब यह पंक्ति एक फकीर ने पढ़ी तो उन्हें यह बहुत प्यारी लगी। उन्होंने प्रयत्न कर यह जानना चाहा कि इसे किस सन्त ने कहा है। क्या वह जीवित है? उनकी खोज काम आई। वह जान गए कि इस पद के रचनाकार अमृतराय हैं। यह सन्त औरंगाबाद के थे। मन में जिज्ञासा हुई। उन्हें मिलने पहुंचे। यह उस फकीर का सौभाग्य कि संत अमृतराय उन्हें आसानी से मिल गए।

"आपने पद-'वैराग्यभाग्यासारखे भाग्य नाहीं।' की रचना कर एक सत्य की अभिव्यक्ति तो की है, मगर स्वयं हर प्रकार के सुख भोगने के पश्चात आप लोगों को वैराग्य का जो उपदेश दे रहे हैं वह ठीक नहीं।"

"आप भले ही ऐसा कहें, किन्तु मैंने कुछ गलत नहीं किया। देह-प्रारब्ध भी तो कोई चीज है। इसमें मैं क्या कर सकता हूं?"

"आप ऐसा कहते हैं तो फिर चलो वन-भ्रमण कर आते हैं। चलेंगे मेरे साथ?" फकीर ने सन्त अमृतराय से कहा।

इतना सुनते ही संत उठे। फकीर के साथ वन को चल पड़े। वन के बीचों बीच पहुंचकर फकीर ने कहा-"संतजी! आप यहां वृक्ष के नीचे विश्राम करें। मैं पास के गांव से भिक्षा मांगकर लाता हूं।" और वह चले गए भोजन का प्रबन्ध करने।

कुछ ही देर में एक सरकारी अधिकारी अपने सेवकों के साथ उधर से निकले। जब उन्होंने अपने गुरु संत अमृतराय को वहां देखा तो रुक गए। प्रणाम किया। तभी अपने सेवकों से कहा कि वे संतजी के लिए गद्दा तथा भोजन का प्रबन्ध करें। जब तक फकीर भिक्षा मांगकर लौटे, सन्तजी के लिए सभी प्रबन्ध हो गए। उन्हें गद्दे पर बैठे तो देखा ही सरकारी अधिकारी संतजी के पांव पखार रहे थे, इस बात ने भी उन्हें चकित कर दिया। भोजन भी ढककर रखा था वहां। यह सब देखकर फकीर हाथ जोड़कर चरणों में बैठ गये। बोले-"संतजी आपका दोहा व आपका दृष्टिकोण, दोनों ठीक हैं। मैं आपको ठीक से समझ नहीं सका। मुझे क्षमा करें। आपका देह-प्रारब्ध तत्त्वज्ञान पूर्णतः सत्य है।"

* * *

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE